

## Chapter साठ

### रुक्मिणी के साथ कृष्ण का परिहास

इस अध्याय में यह बतलाया गया है कि भगवान् कृष्ण ने किस तरह अपने परिहास से महारानी रुक्मिणी को रुठाया और फिर शान्त किया और इस तरह प्रेमियों के कलह रूपी ऐश्वर्य का प्रदर्शन किया।

एक दिन भगवान् कृष्ण रानी रुक्मिणी के शयनागार में आराम से बैठे थे और रुक्मिणी तथा उनकी दासियाँ अनेक प्रकार से उनकी सेवा कर रही थीं। रुक्मिणी सदैव कृष्ण की मनःस्थिति अनुसार उत्तर देती थीं, चाहे वे जैसी भी हो। इस अवसर पर भगवान् ने रुक्मिणी की ओर ताका जिसका सौन्दर्य अनिन्द्य था और उसे तंग करने लगे, “पूर्वकाल में अनेक धनी, रूपवान तथा चरित्रवान राजा तुमसे ब्याह करना चाहते थे। हाँ, तुम्हारे पिता तथा भाई तुम्हारी शादी शिशुपाल से करना चाहते थे। तो फिर तुमने मुझ जैसे अनुपयुक्त पति को क्यों चुना, जो एक बार जरासन्ध के भय से अपना राज्य छोड़कर, समुद्र की ओर भाग आया? यही नहीं, मैं सांसारिक नैतिकता का उल्लंघन करने वाला हूँ और पास में कुछ न होने के कारण निर्धनों को प्रिय हूँ। निश्चय ही जो लोग सम्पन्न हैं, वे मुझ जैसे की पूजा करना नहीं चाहेंगे।

“जब पुरुष तथा स्त्री एक ही समान सामाजिक श्रेणी, प्रभाव, शारीरिक सौन्दर्य इत्यादि के होते हैं, तभी उनमें विवाह या मैत्री निभ सकती है। किन्तु अपनी संकुचित दृष्टि के कारण तुमने ऐसा पति चुना है, जिसमें सभी सद्गुणों का अभाव है और जो केवल भिक्षुकों द्वारा प्रशंसित है। अच्छा होता कि तुमने किसी प्रमुख योद्धा से ब्याह किया होता। तब तुम इस जीवन में तथा अगले जीवन में सुखी रह सकती थी। तुम्हारा भाई रुक्मी तथा शिशुपाल जैसे राजा मुझसे द्वेष रखते हैं और इन लोगों के गर्व को चूर करने के लिए ही मैंने तुम्हारा हरण किया था। किन्तु जहाँ तक शरीर, घर, पत्नी तथा बच्चों की बात है, मैं उनके प्रति अन्यमनस्क हूँ क्योंकि मैं आत्मतुष्ट ईश्वर हूँ, जो समस्त संसारी कार्यों के परे है।”

इस तरह रुक्मिणी के इस आत्मविश्वास को भंग करते हुए कि वे अपने पति की कृपापात्र हैं, श्रीकृष्ण ने बातें समाप्त कर दीं। इस पर रुक्मिणी फूट-फूटकर रोने लगीं और अतीव भय, पीड़ा तथा

दुख से स्तम्भित होकर अचेत हो गई। श्रीकृष्ण ने देखा कि रुक्मिणी ने उनके परिहास को गलत समझा है अतएव उनके प्रति करुणा उमड़ आई। उन्होंने रुक्मिणी को फर्श से उठाकर मुख चूमते हुए सान्त्वना दी, “मैं जानता हूँ कि तुम पूरी तरह मुझमें अनुरक्त हो। मैंने तो तुम्हारे कमल-मुख को तिलमिलाते देखने की उत्सुकता से तुम्हें तंग किया है। अपनी प्राणप्रिया से परिहास करना गृहस्थों का सबसे बड़ा आनन्द है।”

इन शब्दों से रुक्मिणी के मन से तिरस्कृत होने का भय जाता रहा। यह देखकर कि कृष्ण ने यह सब परिहास में कहा है, वे बोलीं, “आपने हम दोनों के बीच जिस असमानता की बात कही है, वह वास्तव में सही है। निस्सन्देह कोई भी आपके तुल्य नहीं है। आप तो तीनों देवों—ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव—के सर्वशक्तिमान स्वामी हैं।” यह दिखाने के लिए कि कृष्ण ने अपने को तुच्छ बताने वाली जो बातें कहीं हैं, वे वास्तव में प्रशंसा हैं, रुक्मिणी आगे बोलती रहीं।

तब कृष्ण ने अतीव स्नेहपूर्वक रुक्मिणी से कहा, “मैंने अपने परिहास से तुम्हारे मन को क्षुब्ध नहीं करना चाहा था। मैं तो तुम्हारे सतीत्व की शक्ति का प्रदर्शन देखना चाहता था। जो भी व्यक्ति गृहस्थजीवन में इन्द्रिय-तृप्ति तथा सुख के लिए मुझसे प्रार्थना करता है, वह मेरी मोहिनी शक्ति माया द्वारा ठगा जाता है। ऐसा व्यक्ति अधम जन्म प्राप्त करेगा। शायद दुष्ट इच्छाओं वाली सामान्य स्त्रियाँ श्रद्धापूर्वक मेरी वैसी पूजा नहीं कर पातीं जैसे कि तुमने की है। अपने विवाह के समय तुमने किसी राजसी वर के प्रति रुचि नहीं दिखलाई प्रत्युत तुमने मेरे पास ब्राह्मण-दूत भेजा। इस तरह तुम निश्चित रूप से मेरी समस्त प्रियतमाओं में सर्वाधिक प्रिय हो।”

इस तरह ब्रह्माण्ड के स्वामी श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी रूपी लक्ष्मी के साथ परिहास में आनन्द प्राप्त किया। इसी तरह उन्होंने अन्य रानियों के महलों में गृहस्थ के सारे कर्तव्यों को पूरा किया।

श्रीबादरायणिरुवाच

कर्हिचित्सुखमासीनं स्वतल्पस्थं जगद्गुरुम् ।

पतिं पर्यचरद्भैष्मी व्यजनेन सखीजनैः ॥ १ ॥

शब्दार्थ

श्री-बादरायणिः—बादरायण व्यासदेव के पुत्र शुकदेव गोस्वामी ने; उवाच—कहा; कर्हिचित्—एक अवसर पर; सुखम्—सुखपूर्वक; आसीनम्—बैठे हुए; स्व—अपने; तल्प—बिस्तर में; स्थम्—स्थित; जगत्—ब्रह्माण्ड के; गुरुम्—गुरु; पतिम्—अपने पति को; पर्यचरत्—सेवा कर रही थी; भैष्मी—रुक्मिणी; व्यजनेन—पंखे से; सखी-जनैः—अपनी सखियों सहित।

श्री बादरायणि ने कहा : एक बार अपनी दासियों के साथ महारानी रुक्मिणी ब्रह्माण्ड के आध्यात्मिक गुरु अपने पति की सेवा कर रही थीं। वे उनके बिस्तर पर विश्राम कर रहे थे तथा वे उन पर पंखा झल रही थीं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने काव्यात्मक टिप्पणी में कहा है कि इस अध्याय में रुक्मिणी उस सुगंधित कपूर की तरह हैं, जिन्हें भगवान् कृष्ण की वाणी की सिल पर पीस दिया गया हो। दूसरे शब्दों में, रुक्मिणी के मनोहर सात्विक गुणों का प्राकट्य भगवान् कृष्ण के ऊपरी असंवेदनशील वचनों के फलस्वरूप होगा, जिस प्रकार कपूर की सुगन्ध कपूर के खण्डों को सिल पर पीसने से प्रकट होती है। आचार्य ने यह भी इंगित किया है कि रुक्मिणी भगवान् की सेवा स्वयं इसलिए कर रही हैं, क्योंकि वे जगद्गुरुम् तथा पतिम् अर्थात् जगत् गुरु तथा उनके पति हैं।

यस्त्वेतल्लीलया विश्वं सृजत्यत्यवतीश्वरः ।

स हि जातः स्वसेतूनां गोपीथाय यदुष्वजः ॥ २ ॥

#### शब्दार्थ

यः—जो; तु—तथा; एतत्—यह; लीलया—खेल की तरह; विश्वम्—ब्रह्माण्ड को; सृजति—उत्पन्न करता है; अन्ति—निगल जाता है; अवति—रक्षा करता है; ईश्वरः—परम नियन्ता; सः—वह; हि—निस्सन्देह; जातः—उत्पन्न; स्व—निजी; सेतूनाम्—नियमों की; गोपीथाय—सुरक्षा के लिए; यदुषु—यदुओं के मध्य; अजः—अजन्मा प्रभु।

इस ब्रह्माण्ड को खेल-खेल में उत्पन्न करने वाले, उसका पालन करने वाले तथा अन्त में उसको निगल जाने वाले अजन्मे परम नियन्ता भगवान् ने अपने नियमों को सुरक्षित रखने के लिए यदुओं के मध्य जन्म लिया।

तात्पर्य : जैसाकि श्रीमद्भागवत के छठे स्कंध (६.३.१९) में कहा गया है—धर्म तु साक्षाद् भगवत्प्रणीतम्—अर्थात् धर्म भगवान् द्वारा स्थापित कानून है। सेतु का अर्थ है “सीमा” जैसी कि बाँध में होती है। किसी नदी या नहर के दोनों ओर मिट्टी उठा दी जाती है, जिससे पानी अपने सही मार्ग से विचलित न हो। इसी प्रकार ईश्वर नियमों की स्थापना करते हैं जिससे उन्हें पालन करने वाले लोग भगवद्धाम वापस जा सकें। मानव आचरण का मार्गदर्शन कराने वाले ये नियम सेतु कहलाते हैं।

सेतु शब्द पर एक और टिप्पणी यह है कि सेतु का प्रयोग खेतों के पृथक्करण अथवा उन पर बनी मेड़ या पुल बनाने के लिए भी होता है। अतः भागवत के नवें स्कंध में भगवान् रामचन्द्र द्वारा लंका जाने के लिए जो पुल बनाया गया उसे सेतु कहा गया है। चूँकि ईश्वर के नियम हमें भौतिक जीवन से

मुक्त दिव्य जीवन तक ले जाने के लिए पुल का काम करते हैं इसलिए सेतु शब्द का ऐसा व्यवहार दृष्टव्य है।

तस्मिन्तर्गृहे भ्राजन्मुक्तादामविलम्बिना ।  
विराजिते वितानेन दीपैर्मणिमयैरपि ॥ ३ ॥  
मल्लिकादामभिः पुष्पैर्द्विरेफकुलनादिते ।  
जालरन्ध्रप्रविष्टैश्च गोभिश्चन्द्रमसोऽमलैः ॥ ४ ॥  
पारिजातवनामोदवायुनोद्धानशालिना ।  
धूपैरगुरुजै राजन्जालरन्ध्रविनिर्गतैः ॥ ५ ॥  
पयःफेननिभे शुभ्रे पर्यङ्के कशिपूत्तमे ।  
उपतस्थे सुखासीनं जगतामीश्वरं पतिम् ॥ ६ ॥

### शब्दार्थ

तस्मिन्—उसमें; अन्तः—गृहे—महल के भीतरी भाग में; भ्राजत्—चमकीली; मुक्ता—मोतियों की; दाम—डोरियों से; विलम्बिना—लटकती हुई; विराजिते—चमकीली; वितानेन—चँदोवे से; दीपैः—दीपकों से; मणि—मणियों के; मयैः—निर्मित; अपि—भी; मल्लिका—चमेली की; दामभिः—मालाओं से; पुष्पैः—फूलों से; द्विरेफ—भौरों के; कुल—झुंड के साथ; नादिते—शब्दायमान; जाल—झरोखों के; रन्ध्र—छोटे छोटे छेदों से होकर; प्रविष्टैः—प्रविष्ट; च—तथा; गोभिः—किरणों से; चन्द्रमसः—चन्द्रमा की; अमलैः—निर्मल; पारिजात—पारिजात वृक्षों के; वन—कुंज के; आमोद—सुगंध ( वहन करते ); वायुना—हवा द्वारा; उद्धान—बगीचे की; शालिना—उपस्थिति लाते हुए; धूपैः—धूप से; अगुरु—अगुरु से; जैः—उत्पन्न; राजन्—हे राजा ( परीक्षित ); जाल-रन्ध्र—झरोखे के छेदों से; विनिर्गतैः—बाहर निकलते हुए; पयः—दूध के; फेन—झाग; निभे—सदृश; शुभ्रे—चमकीला; पर्यङ्के—बिस्तर पर, सेज पर; कशिपु—तकिया पर; उत्तमे—सर्वश्रेष्ठ; उपतस्थे—सेवा कर रही थी; सुख—सुखपूर्वक; आसीनम्—बैठे; जगताम्—सारे लोकों के; ईश्वरम्—परम नियन्ता; पतिम्—अपने पति की।

महारानी रुक्मिणी के कमरे अत्यन्त सुन्दर थे। उसमें एक चँदोवे से मोतियों की चमकीली लड़ें लटक रही थीं और तेजोमय मणियाँ दीपकों का काम दे रही थीं। उसमें यत्र-तत्र चमेली तथा अन्य फूलों की मालाएँ लटक रही थीं जिनसे गुणगुनाते भौरों के समूह आकृष्ट हो रहे थे और चन्द्रमा की निर्मल किरणें जाली की खिड़कियों के छेदों से होकर चमक रही थीं। हे राजन्, जब इन खिड़कियों के छेदों में से अगुरु की सुगंध बाहर निकलती तो पारिजात कुंज की सुगंध को ले जाने वाली मन्द बयार कमरे के भीतर बगीचे का वातावरण पैदा कर देती। इस कमरे में महारानी समस्त लोकों के परमेश्वर अपने पति की सेवा कर रही थीं जो उनके मुलायम तथा दूध के फेन जैसे सफेद बिस्तर पर एक भव्य तकिये के सहारे बैठे थे।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार रुक्मिणी का महल आज की ही तरह तब भी विख्यात था। यह वर्णन उसके ऐश्वर्य की झाँकी प्रस्तुत करता है। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती कहते हैं कि इस

श्लोक के अमलै का पाठान्तर अरुणै भी हो सकता है, जो यह सूचित करेगा कि जब यह लीला हो रही थी तब चन्द्रमा उसी समय उदय हुआ था और सारे महल को सुन्दर चाँदनी की लालिमा से नहला रहा था।

वालव्यजनमादाय रत्नदण्डं सखीकरात् ।  
तेन वीजयती देवी उपासां चक्र ईश्वरम् ॥ ७ ॥

#### शब्दार्थ

वाल—चमरी के बाल के; व्यजनम्—पंखे को; आदाय—लेकर; रत्न—रत्न की; दण्डम्—डंडी वाले; सखी—अपनी सहेली के; करात्—हाथ से; तेन—उससे; वीजयती—पंखा झलती; देवी—देवी; उपासाम् चक्रे—पूजा की; ईश्वरम्—अपने स्वामी की।

देवी रुक्मिणी ने अपनी दासी के हाथ से रत्नों की डंडी वाला चमरी के बाल का पंखा ले लिया और तब अपने पति पर पंखा झलकर सेवा करने लगीं।

सोपाच्युतं क्वणयती मणिनूपुराभ्यां  
रेजेऽद्भुतीयवलयव्यजनाग्रहस्ता ।  
वस्त्रान्तगूढकुचकुङ्कुमशोणहार-  
भासा नितम्बधृतया च परार्ध्यकाञ्च्या ॥ ८ ॥

#### शब्दार्थ

सा—वह; उप—समीप; अच्युतम्—भगवान् कृष्ण के; क्वणयती—शब्द करती; मणि—मणिजटित; नूपुराभ्याम्—अपने नूपुरों से; रेजे—सुन्दर लग रही थी; अद्भुतीय—अँगूठी; वलय—चूड़ियाँ; व्यजन—तथा पंखे सहित; अग्र-हस्ता—अपने हाथ में; वस्त्र—अपने वस्त्र के; अन्त—छोर से; गूढ—छिपे; कुच—स्तनों से; कुङ्कुम—सिंदूर से; शोण—लाल हुए; हार—गले के हार की; भासा—चमक से; नितम्ब—उसके कूल्हे पर; धृतया—पहनी हुई; च—तथा; परार्ध्य—बहुमूल्य; काञ्च्या—करधनी से।

महारानी रुक्मिणी का हाथ अँगूठियों, चूड़ियों तथा चामर पंखे से सुशोभित था और वे भगवान् कृष्ण के निकट खड़ी हुई अतीव सुन्दर लग रही थीं। उनके रत्नजटित पायल शब्द कर रहे थे तथा उनके गले की माला चमचमा रही थी जो उनकी साड़ी के पल्ले से ढके उनके स्तनों पर लगे कुमकुम से लाल लाल हो रही थी। वे अपनी कमर में अमूल्य करधनी पहने थीं।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इंगित करते हैं कि जब महारानी रुक्मिणी तेजी से भगवान् पर पंखा झल रही थीं तो उनके सुन्दर अंगों के रत्न तथा स्वर्णाभूषण शब्द कर रहे थे।

तां रूपिणीं श्रीयमनन्यगतिं निरीक्ष्य  
या लीलया धृततनोरनुरूपरूपा ।

प्रीतः स्मयन्नलककुण्डलनिष्ककण्ठ-  
वक्त्रोल्लसत्स्मितसुधां हरिराबभाषे ॥ ९ ॥

### शब्दार्थ

ताम्—उस; रूपिणीम्—रूप धारण किये; श्रीयम्—लक्ष्मी को; अन्य—जिसके कोई अन्य न हो, एकमात्र; गतिम्—लक्ष्य;  
निरीक्ष्य—देखकर; या—जो; लीलया—लीला के रूप में; धृत—धारण करने वाले; तनोः—शरीरों के; अनुरूप—संगत;  
रूपा—जिसके रूप; प्रीतः—प्रसन्न; स्मयन्—हँसते हुए; अलक—बालों के गुच्छे; कुण्डल—कान के आभूषण; निष्क—गले  
का आभूषण; कण्ठ—गले में; वक्त्र—मुखमंडल; उल्लसत्—चमकता हुआ एवं सुखी; स्मित—हँसी; सुधाम्—अमृत; हरिः—  
कृष्ण ने; आबभाषे—कहा।

ज्योंही भगवान् कृष्ण ने उनका लक्ष्मी के रूप में चिन्तन किया, जो केवल उन्हें ही चाहती हैं, तो उन्हें मन्द हँसी आ गई। भगवान् अपनी लीलाएँ करने के लिए नाना रूप धारण करते हैं और वे यह सोच कर अत्यन्त प्रसन्न थे कि लक्ष्मी ने जो रूप धारण कर रखा था वह उनकी प्रेयसी होने के अनुरूप था। उनका मनोहर मुखमण्डल घुँघराले बालों, कुण्डलों, गले में पड़े हार तथा उनकी उज्ज्वल प्रसन्न मुसकान के अमृत से सुशोभित था। तब भगवान् ने उनसे इस प्रकार कहा।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी ने विष्णु पुराण का एक रोचक श्लोक उद्धृत किया है, जो श्री पराशर द्वारा कहा गया है—

देवत्वे देवदेहेयं मनुष्यत्वे च मानुषी ।

विष्णोर्देहानुरूपं वै करोत्येषात्मनस्तनुम् ॥

“जब भगवान् देवता के रूप में प्रकट होते हैं, तो वे (लक्ष्मी) देवी का रूप धारण करती हैं और जब वे मनुष्य रूप में प्रकट होते हैं, तो वे भी मानुषी रूप धारण करती हैं। इस तरह उनके द्वारा धारण किया हुआ शरीर भगवान् विष्णु द्वारा धारण किये गये रूप से मेल खाता है।”

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती कहते हैं कि भगवान् कृष्ण वैकुण्ठ-पति से भी अधिक सुन्दर हैं और कृष्ण की प्रेयसी रुक्मिणीदेवी वैकुण्ठ-लोक की लक्ष्मी से भी अधिक रूपवती हैं।

श्रीभगवानुवाच

राजपुत्रीप्सिता भूपैर्लोकपालविभूतिभिः ।

महानुभावैः श्रीमद्भ्री रूपौदार्यबलोजितैः ॥ १० ॥

### शब्दार्थ

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; राज-पुत्रि—हे राजकुमारी; ईप्सिता—( तुम्हीं ) अभीष्ट ( थीं ); भू-पैः—राजाओं द्वारा; लोक—लोकों के; पाल—शासकों जैसे; विभूतिभिः—शक्तियों वाले; महा—महान्; अनुभावैः—प्रभाव वाले; श्री-मद्भिः—ऐश्वर्यशाली; रूप—सौन्दर्य से युक्त; औदार्य—उदारता; बल—तथा शारीरिक बल; ऊर्जितैः—सम्पन्न ।

भगवान् ने कहा : हे राजकुमारी, तुम्हारे साथ लोकपालों जैसे शक्तिशाली अनेक राजा पाणिग्रहण करना चाहते थे। वे सभी राजनैतिक प्रभाव, सम्पत्ति, सौन्दर्य, उदारता तथा शारीरिक शक्ति से ऊर्जित थे।

तान्प्राप्तानर्थिनो हित्वा चैद्यादीन्स्मरदुर्मदान् ।

दत्ता भ्रात्रा स्वपित्रा च कस्मान्नो ववृषेऽसमान् ॥ ११ ॥

#### शब्दार्थ

तान्—उनको; प्राप्तान्—आये हुए; अर्थिनः—चाहने वालों को; हित्वा—अस्वीकार करके; चैद्य—शिशुपाल; आदीन्—इत्यादि को; स्मर—कामदेव द्वारा; दुर्मदान्—उन्मत्त; दत्ता—दी गई; भ्रात्रा—तुम्हारे भाई द्वारा; स्व—अपने; पित्रा—पिता द्वारा; च—तथा; कस्मात्—क्यों; नः—हमको; ववृषे—तुमने चुना; असमान्—असमान।

जब तुम्हें तुम्हारे भाई तथा पिता ने उनको अर्पित कर दिया था, तो फिर तुमने चेदि के राजा तथा उन अन्य विवाहार्थियों को क्यों अस्वीकार कर दिया जो कामदेव द्वारा उन्मत्त हुए तुम्हारे समक्ष खड़े थे? तुमने हमें क्यों चुना जो रंच-भर भी तुम्हारे समान नहीं हैं?

राजभ्यो बिभ्यतः सुभु समुद्रं शरणं गतान् ।

बलवद्भिः कृतद्वेषान्प्रायस्त्यक्तनृपासनान् ॥ १२ ॥

#### शब्दार्थ

राजभ्यः—राजाओं से; बिभ्यतः—भयभीत; सु-भु—हे सुन्दर भौंहों वाली; समुद्रम्—समुद्र के पास; शरणम्—शरण के लिए; गतान्—गए हुए; बल-वद्भिः—बलवानों के प्रति; कृत-द्वेषान्—शत्रुता दिखला चुके हुए; प्रायः—अधिकांशतः; त्यक्त—छोड़ा हुआ; नृप—राजा के; आसनान्—आसन को।

हे सुन्दर भौंहों वाली, इन राजाओं से भयभीत होकर हमने समुद्र में शरण ली। हम शक्तिशाली व्यक्तियों के शत्रु बन गए और हमने अपने राज सिंहासन को प्रायः त्याग दिया था।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने इस श्लोक की टीका इस प्रकार की है : “यहाँ भगवान् की मनोवृत्ति को इस प्रकार समझा जा सकता है : ‘जब मैंने रुक्मिणी को स्वर्गिक पारिजात वृक्ष का एक फूल लाकर दिया था, तो सत्यभामा ने इतना क्रोध प्रकट किया कि मैं उसके चरणों पर अपना सिर झुकाकर भी उसे शान्त नहीं कर पाया था। जब मैंने उसे पूरा पारिजात वृक्ष लाकर दिया तब जाकर वह प्रसन्न हुई थी। किन्तु रुक्मिणी ने जब मुझे सत्यभामा को पूरा वृक्ष देते हुए देखा तो भी कोई क्रोध प्रदर्शित नहीं किया। तो भला मैं किस तरह इस पत्नी के क्रुद्ध वचनों का अमृतपान कर सकता हूँ जो

ईर्ष्यारहित है, जो अत्यन्त गम्भीर है और जो सदैव मधुर वचन बोलती है?’ इस प्रकार विचार करते हुए भगवान् ने निश्चय किया, ‘यदि मैं उससे इस तरह बोलूँ तो इसका क्रोध उभार सकूँगा।’ कुछ विद्वान कृष्ण के रुक्मिणी के प्रति ऐसे बोलने की व्याख्या इस तरह से करते हैं।’

आचार्य के अनुसार *बलवदिभः कृतद्वेषान् प्रायः* शब्दों से यह सूचित होता है कि कृष्ण ने अपने अवतार के समय प्रायः समस्त समकालीन राजाओं का विरोध किया और केवल कुछ को—यथा पाण्डवों तथा अपने कुल के स्वामिभक्त सदस्यों को—ही अपना मित्र बनाया। निस्सन्देह, जैसाकि दशम स्कंध के प्रारम्भ में कहा गया है, भगवान् कृष्ण विशेष रूप से इसीलिए प्रकट हुए क्योंकि पृथ्वी असंख्य घटिया राजाओं से बोझिल हो चुकी थी और वे इस बोझ को दूर करना चाहते थे।

अन्त में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इंगित करते हैं कि *त्यक्तनृपासनान्* शब्द इस बात को सूचित करता है कि कंस का वध कर देने के बाद कृष्ण ने राजसिंहासन नम्रता से अपने नाना उग्रसेन को दे दिया था यद्यपि वे स्वयं इसके अधिकारी थे।

अस्पष्टवर्त्मनाम्पुंसामलोकपथमीयुषाम् ।

आस्थिताः पदवीं सुभ्रु प्रायः सीदन्ति योषितः ॥ १३ ॥

शब्दार्थ

अस्पष्ट—अनिश्चित; वर्त्मनाम्—आचरण वाले; पुंसाम्—पुरुषों के; अलोक—सामान्य समाज द्वारा अस्वीकार्य; पथम्—मार्ग को; ईयुषां—ग्रहण करने वाले; आस्थिताः—अनुसरण करते हुए; पदवीम्—मार्ग को; सु-भ्रु—हे सुन्दर भौंहों वाली; प्रायः—सामान्यतया; सीदन्ति—कष्ट पाती हैं; योषितः—स्त्रियाँ।

हे सुन्दर भौंहों वाली, जब स्त्रियाँ ऐसे पुरुषों के साथ रहती हैं जिनका आचरण अनिश्चित होता है और जो समाज-सम्मत मार्ग का अनुसरण नहीं करते तो प्रायः उन्हें कष्ट भोगना पड़ता है।

निष्किञ्चना वयं शश्वन्निष्किञ्चनजनप्रियाः ।

तस्मा त्प्रायेण न ह्याढ्या मां भजन्ति सुमध्यमे ॥ १४ ॥

शब्दार्थ

निष्किञ्चनाः—जिनके पास कुछ भी नहीं है; वयम्—हम; शश्वत्—सदैव; निष्किञ्चन-जन—उन्हें, जिनके पास कुछ भी नहीं है; प्रियाः—प्रिय; तस्मात्—इसलिए; प्रायेण—प्रायः; न—नहीं; हि—निस्सन्देह; आढ्याः—धनी; माम्—मुझको; भजन्ति—पूजते हैं; सु-मध्यमे—हे सुन्दर कटि वाली।

हमारे पास भौतिक सम्पत्ति नहीं है और हम उन्हें ही प्रिय हैं जिनके पास हमारी ही तरह कुछ भी नहीं होता। इसलिए हे सुमध्यमे, धनी लोग शायद ही हमारी पूजा करते हों।



**तात्पर्य :** भगवान् की ही तरह उनके भक्तगण भी कृष्णभावनामृत के श्रेष्ठ आनन्द के प्रति जागृत होने से भौतिक इन्द्रिय-तृप्ति में अरुचि रखते हैं। जो लोग भौतिक सम्पत्ति से मदान्ध हैं, वे भगवद्धाम की परम सम्पत्ति को नहीं जान पाते।

ययोरात्मसमं वित्तं जन्मैश्वर्याकृतिर्भवः ।

तयोर्विवाहो मैत्री च नोत्तमाधमयोः क्वचित् ॥ १५ ॥

#### शब्दार्थ

ययोः—जिन दो का; आत्म-समम्—अपने समान; वित्तम्—सम्पत्ति; जन्म—जन्म; ऐश्वर्य—प्रभाव; आकृतिः—तथा शारीरिक स्वरूप; भवः—भावी सन्तान; तयोः—दोनों का; विवाहः—विवाह; मैत्री—मित्रता; च—तथा; न—नहीं; उत्तम—श्रेष्ठ का; अधमयोः—तथा निम्न; क्वचित्—कभी।

विवाह तथा मैत्री उन दो मनुष्यों के बीच ही उचित होती है जो समान सम्पत्ति, जन्म, प्रभाव, आकृति तथा उत्तम सन्तान की क्षमता वाले हों, किन्तु उत्तम तथा अधम के बीच कभी नहीं।

**तात्पर्य :** उत्तम तथा अधम गुणों वाले व्यक्ति स्वामी तथा सेवक या गुरु तथा शिष्य के रूप में एकसाथ रह सकते हैं किन्तु विवाह तथा मैत्री केवल समान पद वालों में ठीक रहती है। विवाह के प्रसंग में भव शब्द सूचित करता है कि सम्पत्ति में अच्छी सन्तान उत्पन्न करने की समान क्षमता होनी चाहिए।

यहाँ पर भगवान् कृष्ण अपने आपको भौतिक दृष्टि से अयोग्य ठहराते हैं। वस्तुतः भगवान् में कोई भी भौतिक गुण नहीं पाया जाता—वे नितान्त शुद्ध आध्यात्मिक जगत में रहते हैं। इस प्रकार भगवान् का सारा ऐश्वर्य शाश्वत होता है। वह घटिया संसारी किस्म का नहीं होता।

वैदर्भ्यैतदविज्ञाय त्वयादीर्घसमीक्षया ।

वृता वयं गुणैर्हीना भिक्षुभिः श्लाघिता मुधा ॥ १६ ॥

#### शब्दार्थ

वैदर्भि—हे विदर्भ की राजकुमारी; एतत्—यह; अविज्ञाय—न जानते हुए; त्वया—तुम्हारे द्वारा; अदीर्घ-समीक्षया—दूर-दृष्टि के बिना; वृताः—चुना; वयम्—हम; गुणैः—सद्गुणों से; हीनाः—रहित; भिक्षुभिः—भिखारियों द्वारा; श्लाघिताः—प्रशंसित; मुधा—मोहवश।

हे वैदर्भी, दूरदर्शी न होने से तुमने इसका विचार नहीं किया और इसीलिए तुमने अपने पति रूप में हमें चुना है यद्यपि हममें कोई सद्गुण नहीं है और मुग्ध भिखारी ही हमारी प्रशंसा करते हैं।

अथात्मनोऽनुरूपं वै भजस्व क्षत्रियर्षभम् ।  
येन त्वमाशिषः सत्या इहामुत्र च लप्स्यसे ॥ १७ ॥

**शब्दार्थ**

अथ—अब; आत्मनः—अपने; अनुरूपम्—उपयुक्त; वै—निस्सन्देह; भजस्व—स्वीकार करो; क्षत्रिय-ऋषभम्—किसी उच्च कोटि के राजवर्ग को; येन—जिससे; त्वम्—तुम; आशिषः—आशाएँ; सत्याः—पूरी हो सकने वाली; इह—इस जीवन में; अमुत्र—अगले जीवन में; च—भी; लप्स्यसे—प्राप्त करोगी।

अब तुम्हें चाहिए कि अधिक उपयुक्त किसी उच्च कोटि के राजन्य पुरुष को स्वीकार कर लो जो तुम्हें इस जीवन तथा अगले जीवन में भी ऐसी प्रत्येक वस्तु को प्राप्त करने में सहायता कर सके, जो तुम चाहती हो।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण अपनी सुन्दर पत्नी का प्रणयकोप जागृत करके उसे तंग करने जा रहे हैं।

चैद्यशाल्वजरासन्ध दन्तवक्रादयो नृपाः ।  
मम द्विषन्ति वामोरु रुक्मी चापि तवाग्रजः ॥ १८ ॥

**शब्दार्थ**

चैद्य-शाल्व-जरासन्ध-दन्तवक्र-आदयः—चैद्य ( शिशुपाल ), शाल्व, जरासन्ध, दन्तवक्र इत्यादि; नृपाः—राजागण; मम—मुझसे; द्विषन्ति—घृणा करते हैं; वाम-ऊरु—हे सुन्दर जाँघों वाली; रुक्मी—रुक्मी; च अपि—भी; तव—तुम्हारा; अग्र-जः—बड़ा भाई।

हे सुन्दर जाँघों वाली भद्रे, शिशुपाल, शाल्व, जरासन्ध तथा दन्तवक्र जैसे सभी राजा मुझसे घृणा करते हैं और उसी तरह तुम्हारा बड़ा भाई रुक्मी भी करता है।

तेषां वीर्यमदान्धानां दृप्तानां स्मयनुत्तये ।  
आनितासि मया भद्रे तेजोपहरतासताम् ॥ १९ ॥

**शब्दार्थ**

तेषाम्—उन सबों का; वीर्य—अपनी शक्ति के; मद—नशे से; अन्धानाम्—अन्धे हुए; दृप्तानाम्—घमंडी; स्मय—उदंडता; नुत्तये—दूर करने के लिए; आनिता असि—तुम्हें विवाह में हर लिया गया; मया—मेरे द्वारा; भद्रे—कल्याणी, भद्र महिला; तेजः—बल; उपहरता—हटाते हुए; असताम्—दुष्टों के।

इन्हीं राजाओं की उदंडता को दूर करने के लिए ही, हे कल्याणी, मैं तुम्हें हर ले आया क्योंकि वे सभी शक्ति के मद से अन्धे हो चले थे। मेरा उद्देश्य दुष्टों की शक्ति को चूर करना था।

उदासीना वयं नूनं न स्त्र्यपत्यार्थकामुकाः ।  
आत्मलब्ध्यास्महे पूर्णां गेहयोज्योतिरक्रियाः ॥ २० ॥

शब्दार्थ

उदासीनाः—अन्यमनस्क; वयम्—हम; नूनम्—निस्सन्देह; न—नहीं; स्त्री—पत्नियों; अपत्य—सन्तानों; अर्थ—तथा धन के लिए; कामुकाः—लालसा करते हुए, लोलुप; आत्म-लब्ध्या—आत्मतुष्ट होकर; आस्महे—हम रह रहे हैं; पूर्णाः—पूर्ण; गेहयोः—शरीर तथा घर के प्रति; ज्योतिः—अग्नि की तरह; अक्रियाः—किसी कार्य में न लगे हुए।

हम स्त्रियों, बच्चों तथा सम्पत्ति की तनिक भी परवाह नहीं करते। सदैव आत्मतुष्ट रहते हुए हम शरीर तथा घर के लिए कार्य नहीं करते बल्कि प्रकाश की तरह हम केवल साक्षी रहते हैं।

श्रीशुक उवाच

एतावदुक्त्वा भगवानात्मानं वल्लभामिव ।  
मन्यमानामविश्लेषात्तर्पण उपारमत् ॥ २१ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एतावत्—इतना; उक्त्वा—कहकर; भगवान्—भगवान्; आत्मानम्—अपने आप; वल्लभाम्—प्रिया को; इव—सदृश; मन्यमानाम्—मानते हुए; अविश्लेषात्—(उससे) कभी विलग न होने से; तत्—उस; दर्प—घमंड का; ऋः—विनाश करने वाला; उपारमत्—बन्द कर दिया।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : रुक्मिणी ने अपने को भगवान् की विशिष्ट प्रिया समझ रखा था क्योंकि उन्होंने कभी उनका संग नहीं छोड़ा था। ये बातें कहकर भगवान् ने उनके गर्व को दूर कर दिया और तब बोलना बन्द कर दिया।

इति त्रिलोकेशपतेस्तदात्मनः

प्रियस्य देव्यश्रुतपूर्वमप्रियम् ।

आश्रुत्य भीता हृदि जातवेपथु-

श्चिन्तां दुरन्तां रुदती जगाम ह ॥ २२ ॥

शब्दार्थ

इति—इस प्रकार; त्रि-लोक—तीनों लोकों के; ईश—स्वामियों के; पतेः—स्वामी के; तदा—तब; आत्मनः—अपने ही; प्रियस्य—प्रेमी का; देवी—देवी रुक्मिणी ने; अश्रुत—कभी न सुना गया; पूर्वम्—पहले; अप्रियम्—अप्रियता; आश्रुत्य—सुनकर; भीता—भयभीत; हृदि—अपने हृदय में; जात—उत्पन्न; वेपथुः—कम्पन; चिन्ताम्—चिन्ता; दुरन्ताम्—भयानक; रुदती—सिसकती; जगाम ह—अनुभव किया।

रुक्मिणीदेवी ने इसके पूर्व कभी भी अपने प्रिय त्रिलोकेश-पति से ऐसी अप्रिय बातें नहीं सुनी थीं अतः वे भयभीत हो उठीं। उनके हृदय में कँपकपी शुरू हो गई और भीषण उद्विग्नता में वे रोने लगीं।

पदा सुजातेन नखारुणश्रीया

भुवं लिखन्त्यश्रुभिरञ्जनासितैः ।

आसिञ्चती कुङ्कु मरूषितौ स्तनौ

तस्थावधोमुख्यतिदुःखरुद्धवाक् ॥ २३ ॥

शब्दार्थ

पदा—अपने पाँव से; सु-जातेन—अत्यन्त कोमल; नख—नाखूनों के; अरुण—लाल लाल; श्रीय—तेज वाले; भुवम्—पृथ्वी को; लिखन्ती—कुरेदती हुई; अश्रुभिः—अपने आँसुओं से; अञ्जन—काजल; असितैः—काले; आसिञ्चती—सींचती हुई; कुङ्कुम—कुंकुम-चूर्ण से; रूषितौ—लाल; स्तनौ—दोनों स्तन; तस्थौ—शान्त खड़ी हो गई; अधः—नीचे की ओर; मुखी—मुख किये; अति—अत्यन्त; दुःख—दुख से; रुद्ध—रुकी; वाक्—वाणी ।

वे लाल-लाल चमकीले वाले नाखूनों से युक्त अपने कोमल पाँव से भूमि कुरेदने लगीं और अपनी आँख में लगे काजल द्वारा काले हुए आँसुओं से कुंकुम के कारण लाल हुए स्तनों को भिगो दिया। वे मुख नीचा किये खड़ी रहीं और अत्यधिक शोक से उनकी वाणी अवरुद्ध हो गई।

तस्याः सुदुःखभयशोकविनष्टबुद्धे-

हस्ताच्छलथद्वलयतो व्यजनं पपात ।

देहश्च विक्लवधियः सहसैव मुह्यन्

रम्भेव वायुविहतो प्रविकीर्य केशान् ॥ २४ ॥

शब्दार्थ

तस्याः—उसके; सु-दुःख—अत्यधिक दुख; भय—डर; शोक—तथा शोक से; विनष्ट—नष्ट हुई; बुद्धेः—बुद्धि वाली; हस्तात्—हाथ से; श्लथत्—खिसकते हुए; वलयतः—चूड़ियों वाली; व्यजनम्—पंखा; पपात—गिर गया; देहः—उसका शरीर; च—भी; विक्लव—विकल; धियः—जिसका मन; सहसा एव—सहसा; मुह्यन्—मूर्छित हुई; रम्भा—केले के वृक्ष; इव—सदृश; वायु—वायु से; विहतः—उखाड़े गये; प्रविकीर्य—बिखराते हुए; केशान्—अपने बाल ।

रुक्मिणी का मन दुख, भय तथा शोक से अभिभूत हो गया। उनकी चूड़ियाँ उनके हाथ से सरक गईं और उनका पंखा जमीन पर गिर पड़ा। वे मोहवश सहसा मूर्छित हो गईं, उनके बाल इधर-उधर बिखर गये और उनका शरीर भूमि पर इस तरह गिर गया जिस तरह हवा से उखड़ा हुआ केले का वृक्ष गिर पड़ता है।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण के शब्दों से मर्माहत होने से रुक्मिणी यह नहीं समझ पाई कि भगवान् उन्हें केवल सता रहे हैं इसीलिए उनमें शोक के ये भाव दिखे जिन्हें श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने सात्विक भाव कहा है, जो स्तम्भित होने से लेकर मरण दशा तक विस्तीर्ण होते हैं।

तद्वृष्टा भगवान्कृष्णाः प्रियायाः प्रेमबन्धनम् ।

हास्यप्रौढिमजानन्त्याः करुणः सोऽन्वकम्पत ॥ २५ ॥

शब्दार्थ

तत्—यह; दृष्ट्वा—देखकर; भगवान्—भगवान्; कृष्णः—कृष्ण; प्रियायाः—अपनी प्रिया के; प्रेम—शुद्ध ईश प्रेम के; बन्धनम्—बन्धन; हास्य—उनके परिहास का; प्रौढिम्—पूर्ण आशय; अजानन्त्याः—न जान सकने वाली; करुणः—दयालु; सः—उन्होंने; अन्वकम्पत—दया का अनुभव किया।

यह देखकर कि उनकी प्रिया उनके प्रेम से इस तरह बँधी हैं, वे उनके तंग करने के पूरे आशय को नहीं समझ सकीं, दयालु भगवान् कृष्ण को उन पर दया आ गई।

पर्यङ्कादवरुह्याशु तामुत्थाप्य चतुर्भुजः ।

केशान्समुह्य तद्वक्त्रं प्रामृजत्पद्मपाणिना ॥ २६ ॥

#### शब्दार्थ

पर्यङ्कात्—बिस्तर से; अवरुह्य—उतर कर; आशु—जल्दी से; ताम्—उसको; उत्थाप्य—उठाते हुए; चतुर्-भुजः—चार भुजाएँ प्रदर्शित करते; केशान्—उसके बालों को; समुह्य—ठीक करते; तत्—उसके; वक्त्रम्—मुख को; प्रामृजत्—पोंछा; पद्म-पाणिना—अपने कर-कमल से।

भगवान् तुरन्त बिस्तर से उतर आये। चार भुजाएँ प्रकट करते हुए उन्होंने उन्हें ( रुक्मिणी को ) उठाया, उनके बाल ठीक-ठाक किए और अपने कर-कमलों से उनका मुख सहलाया।

तात्पर्य : भगवान् ने चार भुजाएँ इसलिए प्रकट कीं कि वे सारे कार्य एकसाथ पूरा कर सकें।

प्रमृज्याश्रुकले नेत्रे स्तनौ चोपहतौ शुचा ।

आश्लिष्य बाहुना राजननन्यविषयां सतीम् ॥ २७ ॥

सान्त्वयामास सान्त्वज्जः कृपया कृपणां प्रभुः ।

हास्यप्रौढिभ्रमच्चित्तामतदर्हां सतां गतिः ॥ २८ ॥

#### शब्दार्थ

प्रमृज्य—पोंछकर; अश्रु-कले—आँसुओं से पूरित; नेत्रे—उसकी आँखें; स्तनौ—दो स्तनों को; च—तथा; उपहतौ—बिखरे; शुचा—शोकयुक्त आँसुओं से; आश्लिष्य—उसका आलिंगन करके; बाहुना—अपनी बाँह से; राजन्—हे राजा ( परीक्षित ); अनन्य—कोई अन्य नहीं; विषयाम्—जिसकी इच्छित वस्तु; सतीम्—सती को; सान्त्वयाम् आस—सान्त्वना दी; सान्त्व—सान्त्वना विधियों के; ज्ञः—जानने वाले; कृपया—कृपापूर्वक; कृपणाम्—दयनीय; प्रभुः—भगवान्; हास्य—अपने परिहास का; प्रौढि—चतुरता से; भ्रमत्—मोहित हुए; चित्ताम्—चित्त वाले; अतत्-अर्हाम्—उसके योग्य नहीं; सताम्—शुद्ध भक्तों का; गतिः—गन्तव्य।

हे राजन्, उनके अश्रुपूरित नेत्रों तथा संताप के आँसुओं से सने हुए उनके स्तनों को पोंछ कर अपने भक्तों के लक्ष्य भगवान् ने अपनी सती पत्नी का आलिंगन किया जो एकमात्र उन्हीं को चाह रही थीं। सान्त्वना देने की कला में पटु श्रीकृष्ण ने दयनीय रुक्मिणी को मृदुता से ढाढ़स बँधाया जिनका मन भगवान् के चातुरीपूर्ण हास-परिहास से भ्रमित था और जो इस तरह कष्ट भोगने के योग्य न थीं।

श्रीभगवानुवाच

मा मा वैदर्भ्यसूयेथा जाने त्वां मत्परायणाम् ।  
त्वद्वचः श्रोतुकामेन क्ष्वेल्याचरितमङ्गने ॥ २९ ॥

शब्दार्थ

श्री- भगवान् उवाच— भगवान् ने कहा; मा—मत; मा—मुझसे; वैदर्भि—हे वैदर्भी; असूयेथाः—रुष्ट होओ; जाने—मैं जानता हूँ; त्वाम्—तुम; मत्—मुझमें; परायणाम्—पूर्णतया समर्पित; त्वत्—तुम्हारे; वचः—शब्द; श्रोतु—सुनने की; कामेन—इच्छा करते हुए; क्ष्वेल्या—हँसी में; आचरितम्—कार्य किया; अङ्गने—हे अंगना ( स्त्री )।

भगवान् ने कहा : हे वैदर्भी, तुम मुझसे नाराज मत होओ। मैं जानता हूँ कि तुम पूरी तरह मुझमें समर्पित हो। हे प्रिय देवी, मैंने तो ठिठोली में ऐसा कहा था क्योंकि मैं सुनना चाहता था कि तुम क्या कहोगी।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार भगवान् कृष्ण ने यह उक्ति इसलिए कही क्योंकि उन्होंने सोचा कि यदि वे उन्हें विचलित करने के लिए और कुछ कहेंगे तो वे डर जायेंगी या फिर उनके किये हुए पर वे रुष्ट हो जायेंगी।

मुखं च प्रेमसंरम्भस्फुरिताधरमीक्षितुम् ।  
कटाक्षेपारुणापाङ्गं सुन्दरभ्रुकुटीतटम् ॥ ३० ॥

शब्दार्थ

मुखम्—मुख; च—तथा; प्रेम—प्रेम के; संरम्भ—कोप से; स्फुरित—हिलते; अधरम्—होठों से; ईक्षितुम्—देखने के लिए; कटा—तिरछी चितवन के; क्षेप—फेंके जाने से; अरुण—लाल लाल; अपाङ्गम्—आँखों के कोर; सुन्दर—सुन्दर; भ्रु—भौंहों का; कुटी—गहराना; तटम्—किनारों पर।

मैं यह भी चाहता था कि प्रणयकोप में काँपते तुम्हारे अधर, तिरछी चितवनों वाली तुम्हारी आँखों के लाल-लाल कोर तथा क्रोध से तनी तुम्हारी सुन्दर भौंहों की रेखा से युक्त तुम्हारा मुख देख सकूँ।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती व्याख्या करते हैं कि सामान्यतया भगवान् की दिव्य इच्छा से उनके शुद्ध भक्त उनके साथ ऐसा आदान-प्रदान करते हैं जिससे उनकी आध्यात्मिक इच्छाओं की तुष्टि हो सके। किन्तु रुक्मिणी का प्रेम इतना प्रबल था कि उनकी अद्वितीय मुद्रा इस परिस्थिति में प्रधान बन गई और वे कुपित होने की बजाय मूर्छित होकर भूमि पर गिर पड़ीं। इस तरह कृष्ण को अप्रसन्न करना तो दूर रहा, उनके प्रति सर्वव्यापक प्रेम प्रदर्शित करते हुए उन्होंने उनके दिव्य आनन्द में वृद्धि कर दी।

अयं हि परमो लाभो गृहेषु गृहमेधिनाम् ।

यन्नर्मैरीयते यामः प्रियया भीरु भामिनि ॥ ३१ ॥

**शब्दार्थ**

अयम्—यह; हि—निस्सन्देह; परमः—परम; लाभः—लाभ; गृहेषु—गृहस्थ जीवन में; गृह-मेधिनाम्—संसारी गृहस्थों के लिए; यत्—जो; नर्मैः—परिहास से; ईयते—बिताया जाता है; यामः—समय; प्रियया—प्रियतमा के साथ; भीरु—हे डरपोक; भामिनि—हे तुनुकमिजाज।

हे भीरु एवं चंचल, संसारी गृहस्थजन घर में जो सबसे बड़ा आनन्द लूट सकते हैं वह है अपनी प्रियतमाओं के साथ परिहास करने में बिताया जाने वाला समय।

तात्पर्य : भामिनि शब्द क्रुद्ध, कामिनी, चंचल स्त्री का सूचक है। चूँकि प्रिया रुक्मिणी इतने उकसाने के बावजूद क्रुद्ध नहीं हुई इसलिए भगवान् अब भी परिहास कर रहे हैं।

**श्रीशुक उवाच**

सैवं भगवता राजन्वैदभीं परिसान्त्विता ।

ज्ञात्वा तत्परिहासोक्तिं प्रियत्यागभयं जहौ ॥ ३२ ॥

**शब्दार्थ**

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; सा—वह; एवम्—इस प्रकार; भगवता—भगवान् द्वारा; राजन्—हे राजन्; वैदभीं—महारानी रुक्मिणी; परिसान्त्विता—पूर्णतया सान्त्वना दी गई, समझाई-बुझाई गई; ज्ञात्वा—जान कर; तत्—उसके; परिहास—मजाक में कहे गये; उक्तिम्—शब्द; प्रिय—अपने प्रेमी द्वारा; त्याग—परित्याग के; भयम्—भय को; जहौ—त्याग दिया।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : हे राजन्, महारानी वैदभीं भगवान् द्वारा पूरी तरह परिशान्त कर दी गईं और वे यह समझ गईं कि भगवान् ने परिहास में वे शब्द कहे हैं। इस तरह उनका यह भय जाता रहा कि उनके पति उनका परित्याग कर देंगे।

बभाष ऋषभं पुंसां वीक्षन्ती भगवन्मुखम् ।

सव्रीडहासरुचिरस्निग्धापाङ्गेन भारत ॥ ३३ ॥

**शब्दार्थ**

बभाष—बोली; ऋषभम्—अत्यन्त प्रसिद्ध; पुंसाम्—पुरुष से; वीक्षन्ती—देखती हुई; भगवत्—भगवान् के; मुखम्—मुख को; स-व्रीड—सलज्ज; हास—हँसी से युक्त; रुचिर—आकर्षक; स्निग्ध—स्नेहिल; अपाङ्गेन—तथा चितवन से; भारत—हे भरतवंशी।

हे भरतवंशी, भगवान् के मुख पर अपनी आकर्षक तथा स्नेहिल चितवन डालते हुए रुक्मिणी लज्जा से हँसते हुए नर-श्रेष्ठ भगवान् से इस प्रकार बोलीं।

**श्रीरुक्मिण्युवाच**

नन्वेवमेतदरविन्दविलोचनाह

यद्वै भवान्भगवतोऽसदृशी विभूमः ।  
 क्व स्वे महिम्यभिरतो भगवांस्त्र्यधीशः  
 क्वाहं गुणप्रकृतिरज्ञगृहीतपादा ॥ ३४ ॥

**शब्दार्थ**

श्री-रुक्मिणी उवाच—श्री रुक्मिणी ने कहा; ननु—ठीक है; एवम्—ऐसी ही हो; एतत्—यह; अरविन्द-विलोचन—हे कमल जैसे नेत्रों वाले; आह—कहा; यत्—जो; वै—निस्सन्देह; भवान्—आप; भगवतः—भगवान् के; असदृशी—असमान; विभूमः—सर्वशक्तिमान से; क्व—कहाँ, तुलना में; स्वे—अपनी; महिमि—महिमा में; अभिरतः—आनन्द लेते हुए; भगवान्—भगवान्; त्रि—तीन ( मुख्य देवता, ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव ) के; अधीशः—नियन्ता; क्व—तथा कहाँ; अहम्—मैं; गुण—गुणों का; प्रकृतिः—स्वभाव; अज्ञ—मूर्ख व्यक्तियों द्वारा; गृहीत—पकड़े हुए; पादा—जिनके चरण।

श्री रुक्मिणी ने कहा : हे कमल-नयन, आपने जो कहा है वस्तुतः वह सच है। मैं सचमुच सर्वशक्तिमान भगवान् के अनुपयुक्त हूँ। कहाँ तीन प्रमुख देवों के स्वामी एवं अपनी ही महिमा में मग्न रहने वाले भगवान् और कहाँ मैं संसारी गुणों वाली स्त्री जिसके चरण मूर्खजन ही पकड़ते हैं ?

**तात्पर्य :** श्रील श्रीधर स्वामी उन दोषों की सूची देते हैं, जिन्हें कृष्ण ने अपने में होने के बारे में बतलाते हुए अपने को रुक्मिणी का पति होने के अयोग्य घोषित किया था। इसमें समरूप न होना, भयभीत रहना, समुद्र में शरण लेना, बली लोगों से झगड़ना, अपना राज्य छोड़ना, अपने स्वरूप के बारे में अनिश्चय, सामान्य आचरण के मापदण्डों के विरुद्ध कार्य करना, सद्गुणों से विहीन होना, केवल भिखमंगों द्वारा झूठे ही प्रशंसित होना, एकान्तप्रियता, गृहस्थ जीवन की इच्छा का अभाव सम्मिलित हैं। भगवान् ने दावा किया कि रुक्मिणी उनके इन दुर्गुणों को पहचान नहीं पाई। अब वे भगवान् के सभी कथनों का जवाब देती हैं।

सर्वप्रथम वे श्लोक ११ में आये श्रीकृष्ण के कथन—*कस्मान् नो ववृषेऽसमान्*—तुमने हमें क्यों चुना जब हम तुम्हारे समान नहीं हैं ? का उत्तर देती हैं। यहाँ श्रीमती रुक्मिणीदेवी कहती हैं कि वे तथा श्रीकृष्ण निश्चय ही समान नहीं हैं क्योंकि कोई भी भगवान् के समान नहीं हो सकता। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने यह भी इंगित किया है कि रुक्मिणी विनयवश अपनी पहचान भगवान् की बहिरंगा शक्ति से कर रही हैं, जो वस्तुतः उनकी अंश है क्योंकि रुक्मिणी स्वयं लक्ष्मी हैं।

सत्यं भयादिव गुणेभ्य उरुक्रमान्तः  
 शंते समुद्र उपलम्भनमात्र आत्मा ।  
 नित्यं कदिन्द्रियगणैः कृतविग्रहस्त्वं



त्वत्सेवकैर्नृपपदं विधुतं तमोऽन्धम् ॥ ३५ ॥

### शब्दार्थ

सत्यम्—सच; भयात्—भय से; इव—मानो; गुणेभ्यः—भौतिक गुणों के; उरुक्रम—हे दिव्य कौशल करने वाले; अन्तः—भीतर; श्लेते—शयन करते हो; समुद्रे—समुद्र में; उपलम्भन-मात्रः—पूर्ण भिज्ञता; आत्मा—परमात्मा; नित्यम्—सदैव; कत्—बुरा; इन्द्रिय-गणैः—समस्त इन्द्रियों के विरुद्ध; कृत-विग्रहः—युद्ध करते हुए; त्वम्—तुम; त्वत्—तुम्हारे; सेवकैः—सेवकों द्वारा; नृप—राजा का; पदम्—पद; विधुतम्—अस्वीकृत, दुत्कारा गया; तमः—अंधकार; अन्धम्—घना।

हाँ, भगवान् उरुक्रम, आप समुद्र के भीतर शयन करते हैं मानो भौतिक गुणों से भयभीत हों और इस तरह आप शुद्ध चेतना में हृदय के भीतर परमात्मा रूप में प्रकट होते हैं। आप निरन्तर मूर्ख इन्द्रियों के विरुद्ध संघर्ष करते रहते हैं, यहाँ तक कि आपके दास भी अज्ञान के अंधकार में ले जाने वाले साम्राज्य के अवसर को दुत्कार देते हैं।

तात्पर्य : श्लोक १२ में कृष्ण ने कहा था—*राजभ्यो बिभ्यतः सुभ्रु समुद्रं शरणं गतान्*—हमने राजाओं के भय से समुद्र में जाकर शरण ली। यहाँ श्रीमती रुक्मिणीदेवी इंगित करती हैं कि इस जगत के असली शासक तो प्रकृति के भौतिक गुण हैं, जो सारे जीवों को कर्म करने के लिए बाध्य करते हैं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इंगित करते हैं कि चूँकि भगवान् कृष्ण डरते रहते हैं कि उनके भक्त गुणों के प्रभाव में आ जायेंगे और इन्द्रिय-तृप्ति में फँस जायेंगे इसलिए वे उनके हृदयों के आन्तरिक समुद्र में प्रवेश करते हैं जहाँ वे सर्वज्ञपरमात्मा के रूप में रहने लगते हैं (*उपलम्भनमात्र आत्मा*)। इस तरह वे अपने भक्तों की रक्षा करते हैं। *उपलम्भनमात्रः* शब्द से यह भी सूचित होता है कि भगवान् अपने भक्तों की ध्यान के साधन हैं।

श्लोक १२ में कृष्ण ने यह भी कहा है—*बलवद्भिः कृतद्वेषान्*—हमने बलवानों से शत्रुता मोल ली है। यहाँ श्रीमती रुक्मिणीदेवी इंगित करती हैं कि वस्तुतः इस जगत में भौतिक इन्द्रियाँ ही प्रबल हैं। भगवान् ने अपने भक्तों के हित में इन्द्रिय-तृप्ति के विरुद्ध युद्ध छेड़ रखा है और इस तरह आध्यात्मिक शुद्धि के उनके संघर्ष में वे निरन्तर उनकी सहायता करते रहते हैं। जब भक्तगण अवांछित भौतिक इच्छाओं से मुक्त हो जाते हैं, तो भगवान् उनके समक्ष प्रकट होते हैं और तब भगवान् तथा उनके भक्तों के मध्य का प्रेममय सम्बन्ध एक अटल तथ्य बन जाता है।

उसी श्लोक में कृष्ण ने कहा है—*त्यक्तनृपासनान्*—हमने राजसिंहासन को छोड़ दिया। किन्तु यहाँ श्रीमती रुक्मिणीदेवी इंगित करती हैं कि इस संसार में राजनैतिक श्रेष्ठता का पद तथाकथित सशक्त नेताओं को गहन अंधकार में फँसा देता है। कहावत है—“प्रभुता पाइ काहि मद नाही।” इस प्रकार

भगवान् के प्रिय दास तक राजनैतिक छल तथा शक्ति की राजनीति से कतराते हैं। भगवान् अपने ही आध्यात्मिक आनन्द से तुष्ट रहने के कारण शायद ही संसारी राजनैतिक पद ग्रहण करने में रुचि रखते हों। इस प्रकार श्रीमती रुक्मिणीदेवी भगवान् के कार्यों को उनकी दिव्य प्रकृति के साक्षी के रूप में सही-सही विश्लेषण करती हैं।

त्वत्पादपद्मकरन्दजुषां मुनीनां  
वर्त्मास्फुटं खपशुभिर्ननु दुर्विभाव्यम् ।  
यस्मादलौकिकमिवेहितमीश्वरस्य  
भूमंस्तवेहितमथो अनु ये भवन्तम् ॥ ३६ ॥

#### शब्दार्थ

त्वत्—तुम्हारे; पाद—पैरों की; पद्म—कमल जैसे; मकरन्द—मधु, शहद; जुषाम्—आस्वादन करने वाले; मुनीनाम्—मुनियों का; वर्त्म—( आपका ) मार्ग; अस्फुटम्—अप्रकट; ननु—मनुष्य रूप में; पशुभिः—पशुओं द्वारा; ननु—निश्चय ही, तब; दुर्विभाव्यम्—समझ पाना असम्भव; यस्मात्—क्योंकि; अलौकिकम्—अलौकिक; इव—मानो; ईहितम्—कार्यकलाप; ईश्वरस्य—भगवान् के; भूमन्—हे सर्वशक्तिमान; तव—तुम्हारे; ईहितम्—कार्यकलाप; अथ उ—अतः; अनु—अनुसरण करते हुए; ये—जो; भवन्तम्—आपको।

जब आपकी गतिविधियाँ, उन मुनियों के लिए भी अस्पष्ट हैं, जो आपके चरणकमलों के मधु का आस्वादन करते हैं, तो फिर वे निश्चय ही मनुष्यों की समझ में न आने वाली हैं, जो पशुओं जैसा आचरण करते हैं। और हे सर्वशक्तिमान प्रभु, जिस तरह आपके कार्यकलाप दिव्य हैं उसी तरह आपके अनुयायियों के भी हैं।

तात्पर्य : यहाँ पर रुक्मिणी श्लोक १३ में व्यक्त भगवान् कृष्ण के कथन का उत्तर देती हैं—

अस्पष्टवर्त्मानां पुंसाम् अलोकपथमीयुषाम् ।

आस्थिताः पदवीं सुभ्रु प्रायः सीदन्ति योषितः ॥

“हे सुन्दर भौंहों वाली! जब स्त्रियाँ ऐसे पुरुषों के साथ रहती हैं जिनका आचरण अनिश्चित होता है और जो समाज-सम्मत मार्ग का अनुसरण नहीं करते तो प्रायः उन्हें कष्ट भोगना पड़ता है।”

इस श्लोक में आगत अलोक-पथम् का अर्थ रुक्मिणीदेवी “असंसारी पथ” लगा रही हैं। संसारी आचरण में फँसे लोग इस संसार का भोग लगभग पशुओं जैसा कर रहे हैं। यदि ऐसे लोग “सांस्कृतिक दृष्टि से उन्नत” भी हों तो उन्हें परिष्कृत पशु ही माना जाना चाहिए। श्रीमती रुक्मिणीदेवी इंगित करती हैं कि चूँकि भगवान् के कार्यकलाप सदैव दिव्य होते हैं अतएव वे सामान्य व्यक्तियों के

लिए अस्पष्ट होते हैं। यहाँ तक कि मुनिगण भी जो भगवान् को जानने का प्रयास करते हैं, इन कार्यकलापों को ठीक से नहीं समझ पाते।

निष्किञ्चनो ननु भवान्न यतोऽस्ति किञ्चिद्  
 यस्मै बलिं बलिभुजोऽपि हरन्त्यजाद्याः ।  
 न त्वा विदन्त्यसुतृपोऽन्तकमाढ्यतान्धाः  
 प्रेष्ठो भवान्बलिभुजामपि तेऽपि तुभ्यम् ॥ ३७ ॥

#### शब्दार्थ

निष्किञ्चनः—सम्पत्तिविहीन; ननु—निस्सन्देह; भवान्—आप; न—नहीं; यतः—जिसके परे; अस्ति—है; किञ्चित्—कुछ भी; यस्मै—जिसको; बलिम्—भेंट; बलि—भेंट का; भुजः—भोक्ता; अपि—भी; हरन्ति—वहन करते हैं; अज-आद्याः—ब्रह्मा इत्यादि; न—नहीं; त्वा—तुमको; विदन्ति—जानते हैं; असु-तृपः—शरीर से तुष्ट रहने वाले व्यक्ति; अन्तकम्—मृत्यु के रूप में; आढ्यता—सम्पत्ति के अपने पद द्वारा; अन्धाः—अन्धे हुए; प्रेष्ठः—परम प्रिय; भवान्—आप; बलि-भुजाम्—उपहार के परम भोक्ता के लिए; अपि—भी; ते—वे; अपि—भी; तुभ्यम्—तुमको ( प्रिय हैं )।

आपके पास कुछ भी नहीं है क्योंकि आपसे परे कुछ भी नहीं है। बलि के परम भोक्ता, ब्रह्मा तथा अन्य देवता तक आपको नमस्कार करते हैं। जो लोग अपनी सम्पत्ति से अन्धे हुए रहते हैं और अपनी इन्द्रियों को तृप्त करने में लीन रहते हैं, वे काल रूप आपको नहीं पहचान पाते। बलि के भोक्ता देवताओं को आप उसी तरह परम प्रिय हैं जिस तरह कि वे आपको हैं।

तात्पर्य : यहाँ श्रीमती रुक्मिणीदेवी श्लोक १४ में भगवान् कृष्ण के कथन का उत्तर देती हैं। कथन है—

निष्किञ्चना वयं शश्वन् निष्किञ्चनजनप्रियाः ।

तस्मात् प्रायेण न ह्याढ्या मां भजन्ति सुमध्यमे ॥

“हमारे पास कोई भौतिक सम्पत्ति नहीं है और हम उन्हीं को प्रिय हैं जिनके पास हमारी ही तरह कुछ नहीं है। अतः हे नाजुक कटि वाली! धनी लोग शायद ही मेरी पूजा करते हों।”

महारानी रुक्मिणी निष्किञ्चनो ननु से अपनी बात शुरू करती हैं। किञ्चन् शब्द का अर्थ है “कुछ” और निर् या निष् उपसर्ग निषेधवाची है। अतः निष्किञ्चन् का सामान्य अर्थ “वह जिसके पास कुछ भी नहीं होता” या दूसरे शब्दों में “निर्धन” है।

किन्तु प्रस्तुत श्लोक में रुक्मिणी कहती हैं कि भगवान् कृष्ण के पास “कुछ भी नहीं” है इसलिए नहीं कि वे कंगाल हैं, प्रत्युत इसलिए कि वे ही सर्वस्व हैं। दूसरे शब्दों में, चूँकि कृष्ण परम सत्य हैं

अतएव जो कुछ विद्यमान है, वह उनके भीतर है। उन्हें अन्य किसी बाह्य वस्तु को प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं है। उदाहरणार्थ, मनुष्य के पास घर, कार, पुत्र या धन हो सकता है किन्तु ये वस्तुएँ मनुष्य नहीं हो सकतीं क्योंकि ये उससे बाहर विद्यमान हैं। हम कहते हैं कि ये वस्तुएँ उसकी हैं केवल इसलिए कि इन पर उसका नियंत्रण रहता है। किन्तु भगवान् अपनी सृष्टि का केवल नियंत्रण ही नहीं करते हैं अपितु उनकी सृष्टि का अस्तित्व वस्तुतः उनके भीतर रहता है। इस तरह उनकी कोई भी वस्तु उस अर्थ में उनसे बाहर नहीं है, जिस तरह हमारे पास बाह्य वस्तुएँ होती हैं।

आचार्यों ने *निष्किञ्चन्* की व्याख्या इस प्रकार की है—इस कथन से कि किसी व्यक्ति के पास कोई वस्तु है यह अर्थ निकलता है कि उसके पास सारी वस्तुएँ नहीं हैं। दूसरे शब्दों में, यदि हम कहें कि मनुष्य के पास कुछ सम्पत्ति है, तो हमारा आशय यही रहता है कि सारी सम्पत्ति उसकी नहीं है अपितु उसका एक विशेष भाग उसका है। अमरीका के एक मानक शब्दकोष के अनुसार ‘कुछ’ का अर्थ होता है : कोई अनिश्चित अथवा अविशेष संख्या, राशि इत्यादि जो शेष से भिन्न है। संस्कृत के *किञ्चन* शब्द से कुल के एक अंश का बोध होता है। इस तरह इस विचार का निराकरण करने के लिए ही कृष्ण को *निष्किञ्चन* कहा गया है कि उनके पास सौन्दर्य, यश, सम्पत्ति, बुद्धि इत्यादि का केवल कुछ अंश ही है। प्रत्युत उनके पास अनन्त सौन्दर्य, सम्पत्ति, बुद्धि इत्यादि है। ऐसा इसलिए है क्योंकि वे परम सत्य हैं।

*श्रीमद्भागवत* के प्रथम स्कंध, भाग एक की भूमिका का शुभारम्भ जो हमारी वर्तमान चर्चा से पूरी तरह संबद्ध है, श्रील प्रभुपाद इस तरह करते हैं, “ईश्वर की धारणा तथा परब्रह्म की धारणा दोनों समान स्तर पर नहीं हैं। श्रीमद्भागवत में परब्रह्म को लक्ष्य बनाया गया है। ईश्वर की धारणा नियन्ता की सूचक है, जबकि परब्रह्म की धारणा समस्त शक्तियों के चरम उद्गम की सूचक है।” यहाँ पर श्रील प्रभुपाद ने मूल दार्शनिक बात उठाई है। ईश्वर की सम्मान्य परिभाषा “परम व्यक्ति” है और शब्दकोश में *परम* के चार अर्थ हैं (१) सर्वोच्च पद, सत्ता इत्यादि (२) गुण, उपलब्धि, कुशलता में सर्वोच्च (३) सर्वोच्च कोटि (४) अन्तिम, चरम। इनमें से कोई भी परिभाषा परम सत्ता को पूरी तरह बोध नहीं कराती।

उदाहरणार्थ, हम कह सकते हैं कि एक विशेष अमरीकी व्यक्ति सर्वाधिक धनी है या यह कि उच्च न्यायालय देश का सर्वोच्च न्यायालय है किन्तु हमारे कथनों से यही अर्थ निकलता है कि वह अमरीकी

व्यक्ति अन्य किसी से भी अधिक धनी है या वह न्यायालय देश के न्यायालयों से सबसे उच्च है यद्यपि इसे सभी राजनीतिक एवं सामाजिक मामलों में निश्चय ही पूर्ण अधिकार नहीं होते क्योंकि इन क्षेत्रों में इसकी सत्ता विधान सभा और राष्ट्रपति से बँटी होती है। इस तरह परम समस्त जीवों में सर्वोत्कृष्ट तथा सर्वोच्च का सूचक है किन्तु यहाँ विद्यमान हर वस्तु के उद्गम का नहीं है। इस तरह श्रील प्रभुपाद विशेष रूप से इंगित करते हैं कि परम सत्य कृष्ण की धारणा परम व्यक्ति की धारणा से उच्च है और वैष्णव दर्शन समझने के लिए यह परम सत्य होनी चाहिए।

भगवान् कृष्ण मात्र सर्वोपरि व्यक्ति ही नहीं, अपितु वे परम पुरुष हैं और उनकी पत्नी यही कहना चाह रही हैं। इस तरह से *निष्किञ्चन* शब्द यह नहीं सूचित करता कि कृष्ण के पास कोई ऐश्वर्य नहीं है अपितु यह कि उनके पास *सम्पूर्ण* ऐश्वर्य है। इस अर्थ में वे कृष्ण की *निष्किञ्चन* की परिभाषा स्वीकार करती हैं।

श्लोक १४ में कृष्ण ने यह भी कहा था *निष्किञ्चन-जन-प्रियः*—मैं दरिद्रों का प्रिय हूँ। किन्तु यहाँ पर रुक्मिणी संकेत करती हैं कि ब्रह्माण्ड के सबसे धनी जीव देवतागण भगवान् को नियमित बलि देते रहते हैं। हम यह मान सकते हैं कि भगवान् द्वारा नियुक्त प्रतिनिधि होने के नाते सारे देवता यह जानते हैं कि हर वस्तु उन्हीं की है क्योंकि हर वस्तु उनका अंश है जैसाकि ऊपर कहा गया है। अतः *निष्किञ्चन-जन-प्रियः* इस विचार से सही है कि भगवान् तथा उनकी शक्तियों के अलावा कुछ भी नहीं है, भले ही भगवान् की पूजा करने वाले व्यक्ति कितने ही धनी क्यों न प्रतीत हों, वे ईश्वर को प्रेममय कार्य के रूप में वस्तुतः उन्हीं की शक्ति अर्पित कर रहे होते हैं। यही विचार गंगाजल द्वारा गंगा की पूजा करने में या कि पिता के जन्मदिवस पर पिता से प्राप्त धन से उसके पुत्र द्वारा खरीद कर भेंट की जाने वाली वस्तु से प्रकट होता है। यद्यपि पिता ही अपनी भेंट के लिए धन देता है किन्तु वह जिस वस्तु में रुचि रखता है, वह है अपने पुत्र का प्रेम। इसी तरह भगवान् इस विराट जगत को उत्पन्न करते हैं और तब बद्ध-आत्माएँ भगवान् की सृष्टि में से विविध वस्तुएँ संग्रह कर लेती हैं। पवित्रात्माएँ अपने संग्रह में से कुछ सर्वोत्कृष्ट वस्तुएँ बलि के रूप में भगवान् को अर्पित करती हैं और इस तरह अपने को पवित्र बनाती हैं। चूँकि सारा ब्रह्माण्ड तथा सारी वस्तुएँ भगवान् की शक्ति मात्र हैं अतएव हम यह कह सकते हैं कि जो लोग भगवान् की पूजा करते हैं उनके पास कुछ भी नहीं होता।

अधिक रूढ़िगत रूप से तो यह कह सकते हैं कि जिन्हें अपनी विशाल सम्पत्ति का गर्व है वे ईश्वर के समक्ष नतमस्तक नहीं होते। रानी रुक्मिणी भी इन मूर्खों का उल्लेख करती हैं। वे अपने नश्वर शरीरों से सन्तुष्ट रहकर मृत्यु की दैवी शक्ति को जो उनका चुपके से शिकार करती है, नहीं समझ पाते। किन्तु देवतागण जो सर्वाधिक धनी जीव हैं भगवान् को नियमित बलि चढ़ाते हैं और इस तरह जैसा यहाँ वर्णित है भगवान् उन्हें सर्वाधिक प्रिय हैं।

त्वं वै समस्तपुरुषार्थमयः फलात्मा

यद्वाञ्छया सुमतयो विसृजन्ति कृत्स्नम् ।

तेषां विभो समुचितो भवतः समाजः

पुंसः स्त्रियाश्च रतयोः सुखदुःखिनोर्न ॥ ३८ ॥

शब्दार्थ

त्वम्—तुम; वै—निस्सन्देह; समस्त—सारे; पुरुष—मानव जीवन के; अर्थ—लक्ष्यों से; मयः—युक्त; फल—चरम लक्ष्य के; आत्मा—आत्मा; यत्—जिसके लिए; वाञ्छया—इच्छा से; सु-मतयः—बुद्धिमान व्यक्ति; विसृजन्ति—त्याग देते हैं; कृत्स्नम्—हर वस्तु को; तेषाम्—उनके लिए; विभो—हे सर्वशक्तिमान; समुचितः—समुचित; भवतः—आपका; समाजः—सान्निध्य; पुंसः—मनुष्य; स्त्रियाः—तथा स्त्री के लिए; च—तथा; रतयोः—विषय-भोग में अनुरक्त; सुख-दुःखिनोः—सुख तथा दुख का अनुभव करने वाले; न—नहीं।

आप समस्त मानवीय लक्ष्यों के साकार रूप हैं और आप ही जीवन के अन्तिम लक्ष्य हैं। हे सर्वशक्तिमान विभु, आपको प्राप्त करने के इच्छुक बुद्धिमान व्यक्ति अन्य सारी वस्तुओं का परित्याग कर देते हैं। वे ही आपके सान्निध्य के पात्र हैं, न कि वे स्त्री तथा पुरुष जो पारस्परिक विषय-वासना से उत्पन्न सुख तथा दुख में लीन रहते हैं।

तात्पर्य : यहाँ पर महारानी रुक्मिणी श्लोक १५ में आये भगवान् कृष्ण के निम्नलिखित कथन का निराकरण करती हैं—

ययोरात्मसमं वित्तं जन्मैश्वर्याकृतिर्भवः ।

तयोर्विवाहो मैत्री च नोत्तमाधमयोः क्वचित् ॥

“विवाह तथा मैत्री उन दो व्यक्तियों के मध्य उचित है, जो धन, जन्म, प्रभाव, आकृति तथा जनन-क्षमता में समान हों। किन्तु उत्तम तथा अधम के बीच ऐसा कभी नहीं होता।” निस्सन्देह जिन्होंने इन्द्रिय-तृप्ति की भौतिक धारणा का परित्याग करते हुए भगवान् की भक्ति को ग्रहण किया है वे ही समझ सकते हैं कि उनका असली मित्र तथा संगी कौन है—वह स्वयं श्रीकृष्ण हैं।

त्वं न्यस्तदण्डमुनिभिर्गदितानुभाव  
 आत्मात्मदश्च जगतामिति मे वृतोऽसि ।  
 हित्वा भवद्भुव उदीरितकालवेग  
 ध्वस्ताशिषोऽब्जभवनाकपतीन्कुतोऽन्ये ॥ ३९ ॥

### शब्दार्थ

त्वम्—तुम; न्यस्त—जिन्होंने त्याग दिया है; दण्ड—संन्यासी का दंड; मुनिभिः—मुनियों द्वारा; गदित—कहा गया; अनुभावः—जिसका पराक्रम; आत्मा—परमात्मा; आत्मा—स्वयं आप; दः—देने वाला; च—भी; जगताम्—सारे जगतों के; इति—इस प्रकार; मे—मेरे द्वारा; वृतः—चुना हुआ; असि—हो; हित्वा—त्याग कर; भवत्—आपकी; भुवः—भौहों से; उदीरित—उत्पन्न; काल—समय के; वेग—वेग से; ध्वस्त—नष्ट-भ्रष्ट; आशिषः—जिनकी आशाएँ; अब्ज—कमल से उत्पन्न (ब्रह्मा); भव—शिवजी; नाक—स्वर्ग के; पतीन्—स्वामियों को; कुतः—तो फिर क्या; अन्ये—ओश्रेस्।

यह जानते हुए कि संन्यासियों का दंड त्यागे हुए महामुनि आपके यश का बखान करते हैं, कि आप तीनों जगतों के परमात्मा हैं और आप इतने दानी हैं कि अपने आपको भी दे डालते हैं, मैंने ब्रह्मा, शिव तथा स्वर्ग के शासकों को, जिनकी महत्वाकांक्षाएँ आपकी भ्रुकुटी से उत्पन्न काल के वेग से नष्ट-भ्रष्ट हो जाती हैं, त्याग कर आपको अपने पति रूप में चुना है। तो फिर अन्य किसी विवाहार्थी में मेरी क्या रुचि हो सकती थी ?

तात्पर्य : श्लोक १६ में आये कृष्ण के कथन का यह निराकरण है, जो महारानी रुक्मिणी द्वारा किया गया है। उसमें भगवान् कृष्ण ने कहा था—*भिक्षुभिः श्लाघिता मुधा*—मेरा यशोगान भिक्षुकों द्वारा किया जाता है। किन्तु रानी रुक्मिणी संकेत करती हैं कि वे तथाकथित भिक्षुक वास्तव में परमहंस अवस्था को प्राप्त मुनिजन हैं—ऐसे संन्यासी जिन्होंने सर्वोच्च आध्यात्मिक उन्नति प्राप्त कर ली है और इस तरह संन्यासी-दंड का परित्याग कर दिया है। श्लोक १६ में कृष्ण ने अपनी पत्नी पर दो दोषारोपण भी किये हैं। उन्होंने कहा—*वैदर्भ्येतद् अविज्ञाय*—हे वैदर्भी, तुम परिस्थिति से अवगत न थी तथा *त्वयादीर्घसमीक्षया*—क्योंकि तुममें दूरदर्शिता नहीं थी। इस श्लोक में रुक्मिणी का कथन *इति मे वृतोऽसि*—मैंने तुम्हें पति रूप में इसलिए चुना क्योंकि तुममें उपर्युक्त गुण हैं। मैंने जल्दबाजी में चुनाव नहीं किया था। रुक्मिणी यह भी कहती हैं कि उन्होंने ब्रह्मा, शिव तथा स्वर्ग के अन्य शासकों को इसलिए छोड़ दिया था क्योंकि यद्यपि वे, भौतिकता की दृष्टि से, महापुरुष हैं किन्तु ये कृष्ण की भ्रुकुटी से उत्पन्न काल की प्रबल तरंगों से हताश हो जाते हैं। इसलिए रुक्मिणी में दूरदर्शिता का अभाव नहीं था अपितु उन्होंने सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की परिस्थिति की थाह लेने के बाद ही कृष्ण को चुना था।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती रुक्मिणी के भाव की व्याख्या इस प्रकार देते हैं: “हे पति! आपका यह आरोप कि मुझमें दूरदर्शिता का अभाव है यह दिखलाता है कि आप मेरी दूरदर्शिता को जानते थे। वस्तुतः मैंने आपको इसीलिए चुना क्योंकि मैं आपके असली यश को जानती थी।”

जाड्यं वचस्तव गदाग्रज यस्तु भूपान्  
विद्राव्य शार्ङ्गनिनदेन जहर्थ मां त्वम् ।  
सिंहो यथा स्वबलिमीश पशून्स्वभागं  
तेभ्यो भयाद्यदुदधिं शरणं प्रपन्नः ॥ ४० ॥

#### शब्दार्थ

जाड्यम्—मूर्खता; वचः—शब्द; तव—तुम्हारे; गदाग्रज—हे गदाग्रज; यः—जो; तु—भी; भू-पान्—राजाओं को; विद्राव्य—भगाकर; शार्ङ्ग—शार्ङ्ग की, तुम्हारे धनुष की; निनदेन—टंकार से; जहर्थ—ले गये; माम्—मुझको; त्वम्—तुम; सिंहः—सिंह; यथा—जिस तरह; स्व—आपकी; बलिम्—बलि, भेंट; ईश—हे प्रभु; पशून्—पशुओं को; स्व-भागम्—अपना भाग; तेभ्यः—उनके; भयात्—भय से; यत्—जिसने; उदधिम्—समुद्र की; शरणं-प्रपन्नः—शरण ग्रहण की।

हे प्रभु, जिस तरह सिंह भेंट का अपना उचित भाग लेने के लिए छोटे पशुओं को भगा देता है उसी तरह आपने अपने शार्ङ्ग धनुष की टंकार से एकत्रित राजाओं को भगा दिया और फिर मुझे अपने उचित भाग के रूप में अपना बना लिया। अतः हे गदाग्रज, आपके द्वारा यह कहना निरी मूर्खता है कि आपने उन राजाओं के भय से समुद्र में शरण ग्रहण की।।

तात्पर्य : श्लोक १२ में कृष्ण ने कहा है— राजभ्यो बिभ्यतः सुभु समुद्रं शरणं गतान्—उन राजाओं से भयभीत होकर हमने समुद्र में शरण ली। आचार्यों के अनुसार भगवान् कृष्ण ने ऐसे लोगों की प्रशंसा करके जो उनके पति होने की संभावना रखते थे रुक्मिणी का पूर्णरूपेण क्रोध-वर्धन किया। अतः वे क्षुब्ध होकर उनसे कहती हैं कि वे अज्ञानी नहीं हैं अपितु भगवान् ने ही मूर्खतापूर्ण वचन कहे हैं। वे कहती हैं, “तुमने सिंह की तरह उन सभी राजाओं के देखते-देखते मेरा हरण कर लिया और उन्हें अपने शार्ङ्ग धनुष से भगा दिया, इसलिए यह कहना निरी मूर्खता है कि उन्हीं राजाओं के डर से तुम समुद्र में गये।” श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार जब महारानी रुक्मिणी ये वचन कह रही थीं तो वे भौंहें चढ़ाकर क्रुद्ध दिखती थीं और भगवान् को क्रुद्ध तिरछी नजरों से देख रही थीं।”

यद्वाञ्छया नृपशिखामणयोऽनावैन्य-  
जायन्तनाहुषगयादय ऐक्यपत्यम् ।  
राज्यं विसृज्य विविशुर्वनमम्बुजाक्ष



सीदन्ति तेऽनुपदवीं त इहास्थिताः किम् ॥ ४१ ॥

शब्दार्थ

यत्—जिसके लिए; वाञ्छया—इच्छा से; नृप—राजाओं के; शिखामणयः—मुकुट के मणि; अङ्ग-वैन्य-जायन्त-नाहुष-गय-आदयः—अंग ( वेन का पिता ), वैन्य ( वेन का पुत्र, पृथु ), जायन्त ( भरत ), नाहुष ( ययाति ), गय आदि; ऐक्य—एकमात्र; पत्यम्—प्रभुसत्ता युक्त, एकछत्र; राज्यम्—उनके राज्य; विसृज्य—त्याग कर; विविशुः—प्रवेश किया; वनम्—जंगल में; अम्बुज-अक्ष—हे कमल-नेत्र; सीदन्ति—कष्ट उठाते हैं, हताश होते हैं; ते—तुम्हारे; अनुपदवीम्—पथ पर; ते—वे; इह—इस जगत में; आस्थिताः—स्थिर; किम्—क्या।

आपका सान्निध्य प्राप्त करने की अभिलाषा से अंग, वैन्य, जायन्त, नाहुष, गय तथा अन्य श्रेष्ठ राजाओं ने अपने मरा पूरा साम्राज्य त्याग कर आपकी खोज करने के लिए जंगल में प्रवेश किया। हे कमल-नेत्र, भला वे राजा क्योंकर इस जगत में हताश होंगे?

तात्पर्य : यहाँ पर रुक्मिणी ने श्लोक १३ में कृष्ण द्वारा प्रस्तुत विचारों का निराकरण किया है। वस्तुतः श्रीमती रुक्मिणीदेवी भगवान् कृष्ण के ही शब्दों को दुहराती हैं। भगवान् ने कहा था—  
आस्थिताः पदवीं सुभ्रु प्रायः सीदन्ति योषितः—जो स्त्रियाँ मेरे मार्ग का अनुसरण करती हैं वे सामान्यतः कष्ट भोगती हैं। यहाँ रुक्मिणीदेवी कहती हैं—सीदन्ति तेऽनुपदवीं त इहास्थिताः किम्—जो लोग आपके मार्ग में स्थित हैं, वे इस जगत में क्योंकर कष्ट भोगें? वे अनेक महान् राजाओं का उदाहरण देती हैं जिन्होंने जंगल में प्रवेश करने के लिए अपने एकछत्र साम्राज्य का परित्याग किया जहाँ उन्होंने तपस्या की और उनकी दिव्य संगति प्राप्त करने की इच्छा से भगवान् की पूजा की। इस तरह श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार श्रीमती रुक्मिणीदेवी यहाँ श्रीकृष्ण को बतलाना चाहती हैं “आपने कहा है कि मैं राजा की पुत्री होने के कारण अज्ञानी तथा हताश हूँ क्योंकि मैंने आपसे विवाह किया है। किन्तु आप इन महान् प्रबुद्ध राजाओं पर अज्ञानी होने का आरोप कैसे लगा सकते हैं? वे सर्वाधिक बुद्धिमान पुरुष थे फिर भी उन्होंने आपका अनुसरण करने के लिए सर्वस्व त्याग दिया और इसके फलस्वरूप वे कभी हताश नहीं हुए। निस्सन्देह उन्होंने आपका सान्निध्य प्राप्त किया।”

कान्यं श्रयेत तव पादसरोजगन्ध-

माघ्नाय सन्मुखरितं जनतापवर्गम् ।

लक्ष्म्यालयं त्वविगणय्य गुणालयस्य

मर्त्या सदोरुभयमर्थविविक्तदृष्टिः ॥ ४२ ॥

शब्दार्थ

का—कौन स्त्री; अन्यम्—दूसरे पुरुष की; श्रयेत—शरण ग्रहण करेगी; तव—तुम्हारे; पाद—चरण की; सरोज—कमल रूपी; गन्धम्—सुगन्ध; आघ्नाय—सूँघ कर; सत्—महान् सन्तों द्वारा; मुखरितम्—वर्णित; जनता—सारे लोगों के लिए; अपवर्गम्—

मोक्ष प्रदान करते हुए; लक्ष्मी—लक्ष्मी का; आलयम्—निवासस्थान; तु—लेकिन; अविगण्य—गम्भीरतापूर्वक न लेकर; गुण—दिव्य गुणों के; आलयस्य—धाम का; मर्त्या—मर्त्य; सदा—सदैव; ऊरु—महान्; भयम्—भय; अर्थ—स्वार्थ; विविक्त—निश्चित करते हुए; दृष्टिः—दृष्टि।

आपके चरणकमलों की सुगन्ध, जिसकी महिमा बड़े बड़े सन्त गाते हैं, लोगों को मोक्ष प्रदान करती है और यही लक्ष्मीजी का धाम है। इस सुगन्ध को सूँघ कर कौन स्त्री होगी जो किसी अन्य पुरुष की शरण में जायेगी? चूँकि आप दिव्य गुणों के धाम हैं अतः ऐसी कौन-सी मर्त्य स्त्री होगी जो अपने सच्चे स्वार्थ को पहचानने की अन्तर्दृष्टि से युक्त होकर उस सुगन्ध का अनादर करेगी और किसी ऐसे पर आश्रित होगी जो सदैव महान् भय से आतंकित रहता हो?

तात्पर्य : श्लोक १६ में कृष्ण ने दावा किया था कि वे गुणैर्हीना—समस्त गुणों से हीन हैं। इस दावे के निराकरण हेतु भक्त रुक्मिणी यहाँ कहती हैं कि भगवान् गुणालय—समस्त गुणों के धाम—हैं। एक ही क्षण में इस संसार के तथाकथित शक्तिशाली व्यक्ति एकदम असहाय और निरीह बन जाते हैं। निस्सन्देह सारे शक्तिशाली नर-प्राणियों के भाग्य में विनाश लिखा है। किन्तु भगवान् का नित्य आध्यात्मिक शरीर सर्वशक्तिमान तथा अतीव सुन्दर है इसीलिए, जैसाकि महारानी रुक्मिणी यहाँ तर्क करती हैं, भला कोई समझदार, प्रबुद्ध स्त्री भगवान् कृष्ण को छोड़कर और किसी की शरण क्यों लेने लगी?

तं त्वानुरूपमभजं जगतामधीश-

मात्मानमत्र च परत्र च कामपूरम् ।

स्यान्मे तवाङ्घ्रिररणं सृतिभिर्भ्रमन्त्या

यो वै भजन्तमुपयात्यनृतापवर्गः ॥ ४३ ॥

शब्दार्थ

तम्—उस; त्वा—आपको; अनुरूपम्—उपयुक्त; अभजम्—मैंने चुना है; जगताम्—सारे संसारों के; अधीशम्—अनन्तिम स्वामी को; आत्मानम्—परमात्मा को; अत्र—इस जीवन में; च—तथा; परत्र—अगले जीवन में; च—भी; काम—इच्छाओं का; पूरम्—पूरा करने वाला; स्यात्—वे होंगे; मे—मेरे लिए; तव—तुम्हारे; अङ्घ्रिः—चरण; अरणम्—शरण; सृतिभिः—विविध चक्रों द्वारा ( एक योनि से दूसरी योनि में ); भ्रमन्त्याः—भ्रमण कर रहे; यः—जो ( चरण ); वै—निस्सन्देह; भजन्तम्—उनका पूजक, भजन करने वाला; उपयाति—पहुँचते हैं; अनृत—असत्य से; अपवर्गः—मोक्ष।

चूँकि आप मेरे अनुरूप हैं इसलिए मैंने तीनों जगत के स्वामी तथा परमात्मा आपको ही चुना है, जो इस जीवन में तथा अगले जीवन में हमारी इच्छाओं को पूरा करते हैं। आपके चरण जो अपने उन पूजकों के पास पहुँच कर मोह से मुक्ति दिलाते हैं, जो एक योनि से दूसरी योनि में भ्रमण करते रहे हैं, मुझे शरण प्रदान करें।

तात्पर्य : सृतिभिः के स्थान पर अन्य पाठ श्रुतिभिः भी मिलता है, जिसके अनुसार रुक्मिणी के भाव इस प्रकार होंगे, “मैं विविध धार्मिक शास्त्रों में वर्णित अनेकानेक अनुष्ठानों तथा उत्सवों एवं उनसे मिलने वाले फलों की वचन बद्धताओं के विषय में सुन कर मोहग्रस्त होती रही हूँ।” श्रील श्रीधर गोस्वामी ने यह व्याख्या की है किन्तु श्रील जीव गोस्वामी तथा श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने श्रुतिभिः शब्द से रुक्मिणी द्वारा एक अन्य विचार प्रस्तुत किये जाने की बात कही है : “हे मेरे प्रिय कृष्ण! मैं आपके अनेक अवतारों के बारे में सुनकर भ्रमित हो गई थी। मैंने सुना है कि आपने राम का अवतार लेकर अपनी पत्नी सीता का परित्याग किया और इस जीवन में आपने गोपियों का परित्याग किया है। इसीलिए मैं भ्रमित हो गई थी।”

यह सुविदित है कि श्रीमती रुक्मिणीदेवी भगवान् कृष्ण की नित्यमुक्त प्रियतमा हैं किन्तु इस श्लोक में वे भगवान् की शरण में आई मर्त्य स्त्री की भूमिका अदा कर रही हैं।

तस्याः स्युरच्युत नृपा भवतोपदिष्टाः

स्त्रीणां गृहेषु खरगोश्वविडालभृत्याः ।

यत्कर्णमूलमन्कर्षण नोपयायाद्

युष्मत्कथा मृडविरिञ्चसभासु गीता ॥ ४४ ॥

#### शब्दार्थ

तस्याः—उसके; स्युः—( पतियों को ) होने दो; अच्युत—हे अच्युत कृष्ण; नृपाः—राजा; भवता—आपके द्वारा; उपदिष्टाः—कथित; स्त्रीणाम्—स्त्रियों के; गृहेषु—घरों में; खर—गधा; गो—बैल; श्व—कुत्ते; विडाल—बिल्ली; भृत्याः—तथा नौकर; यत्—जिसके; कर्ण—कान के; मूलम्—आन्तरिक भाग; अरि—आपके शत्रु; कर्षण—हे तंग करने वाले; न—कभी नहीं; उपयायात्—पास आते हैं; युष्मत्—आपके विषय में; कथा—विचार-विमर्श; मृड—शिव; विरिञ्च—तथा ब्रह्मा की; सभासु—विद्वानों की मण्डली; गीता—गाया हुआ।

हे अच्युत कृष्ण, आपने जिन-जिन राजाओं के नाम लिये हैं उनमें से हर एक राजा ऐसी स्त्री का पति बन जाये जिसके कानों ने कभी भी आपकी उस महिमा का श्रवण नहीं किया जो शिव तथा ब्रह्मा की सभाओं में गाई जाती है। कुछ भी हो ऐसी स्त्रियों के घरों में ये राजा गधों, बैलों, कुत्तों, बिल्लियों तथा नौकरों की तरह रहते हैं।

तात्पर्य : श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार श्रीमती रुक्मिणीदेवी के ये कटु-वचन श्लोक १० में आये भगवान् कृष्ण के प्रारम्भिक कथन के उत्तर स्वरूप हैं। भगवान् ने कहा था, “हे राजकुमारी! तुम्हें लोकपाल जैसे शक्ति सम्पन्न अनेक राजा चाहते थे। वे प्रचुर राजनैतिक प्रभाव, सम्पत्ति, सौन्दर्य,

उदारता तथा शारीरिक शक्ति से सम्पन्न थे।” श्रील श्रीधर स्वामी के अनुसार यहाँ पर महारानी रुक्मिणी कृष्ण की ओर तर्जनी करके क्रोध से बोल रही हैं। वे तथाकथित बड़े बड़े राजाओं की उपमा गधों से देती हैं क्योंकि वे काफी भौतिक बोझा ढोते हैं। वे राजा अपने वृत्तिपरक कार्यों के करने से बैलों की तरह दुखी रहते हैं। वे अपनी पत्नियों द्वारा अनादरित होते रहने से कुत्तों के समान हैं। वे स्वार्थी तथा क्रूर होने के कारण बिल्लियों जैसे हैं और पारिवारिक मामलों में परतंत्र होने के कारण वे नौकरों जैसे हैं। ऐसे राजा उस मूर्ख स्त्री के उपयुक्त हो सकते हैं जिसने न तो कभी श्रीकृष्ण की महिमा सुनी है, न उसे समझा है।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती कहते हैं कि ऐसे राजा गधों के तुल्य हैं क्योंकि उनकी पत्नियाँ उन्हें कभी कभी लतियाती हैं, वे कुत्तों की तरह हैं क्योंकि वे बाहरी लोगों के प्रति शत्रुवत व्यवहार करते हैं जिससे वे अपने घरों की रक्षा कर सकें। वे बिल्लियों की तरह होते हैं क्योंकि वे अपनी पत्नियों द्वारा छोड़ी गई जूठन खाते हैं।

त्वक्शमश्रुमनखकेशपिनद्धमन्त-

माँसास्थिरक्तकृमिविट्कफपित्तवातम् ।

जीवच्छवं भजति कान्तमतिर्विमूढा

या ते पदाब्जमकरन्दमजिघ्रती स्त्री ॥ ४५ ॥

शब्दार्थ

त्वक्—चमड़ी; श्मश्रु—मूँछें; रोम—रोएँ; नख—नाखून; केश—तथा सिर के बाल से; पिनद्धम्—ढके हुए; अन्तः—भीतर; माँस—माँस; अस्थि—हड्डी; रक्त—खून; कृमि—कीड़े; विट्—मल; कफ—बलगम; पित्त—पित्त; वातम्—तथा वायु; जीवत्—जीवित; शवम्—मृत शरीर; भजति—पूजा करता है; कान्त—पति या प्रेमी; मतिः—विचार; विमूढा—पूर्णतया मोहग्रस्त; या—जो; ते—तुम्हारे; पद-अब्ज—चरणकमलों का; मकरन्दम्—मधु; अजिघ्रती—न सूँघते हुए; स्त्री—स्त्री।

जो स्त्री आपके चरणकमलों के मधु की सुगन्धि का आस्वादन करने से वंचित रह जाती है, वह पूरी तरह मूर्ख ( मूढ ) बन कर रह जाती है और चमड़ी, मूँछ, नाखून, बाल तथा रोओं से ढके और माँस, अस्थियों, रक्त, कीट, मल, कफ, पित्त तथा वायु से भरे जीवित शव को पति या प्रेमी रूप में स्वीकार करती है।

तात्पर्य : यहाँ पर भगवान् कृष्ण की सती पत्नी भौतिक शरीर पर आधारित भौतिक इन्द्रिय-तृप्ति के विषय में दो टूक बातें कहती हैं। श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ने इस श्लोक की टीका इस प्रकार की है : स वै पतिः स्याद् अकुतो भयः स्वयम्—किसी का पति वह बने जो सारे भय को दूर कर सके—

इस प्रमाण के अनुसार श्रीकृष्ण हर काल में समस्त स्त्रियों के असली पति हैं। इस तरह जो स्त्री अन्य किसी को पति रूप में पूजती है, वह मात्र शव की पूजा करती है।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती आगे भी टीका करते हैं: इस तरह रुक्मिणी ने विचार किया कि यद्यपि कृष्ण के चरणकमलों की माधुरी सर्वविदित है और उनका शरीर सच्चिदानन्द स्वरूप है, तो भी मूर्ख स्त्रियाँ उनका तिरस्कार करती हैं। सामान्य पति का शरीर बाहर से चमड़ी तथा बालों के ढका रहता है अन्यथा वह रक्त, मल, मांस, पित्त इत्यादि से पूरित होने के कारण दुर्गन्धयुक्त तथा अन्य घृणाजनक गुण होने से मस्त्रियों तथा अन्य कीटों से आकृष्ट होता है।

जिन्हें कृष्ण या कृष्णभावनामृत के सौन्दर्य तथा शुद्धि का व्यावहारिक अनुभव नहीं है वे ही ऐसी भौतिक शारीरिक तृप्ति की प्रतिकूल भर्त्सना के विषय में गुमराह रहते हैं। किन्तु जो लोग कृष्णभावनामृत में रह कर प्रबुद्ध हैं, वे ऐसे पूर्णतया सत्य कथनों से गतिशील तथा प्रोत्साहित होंगे।

अस्त्वम्बुजाक्ष मम ते चरणानुराग

आत्मन्नतस्य मयि चानतिरिक्तदृष्टेः ।

यर्ह्यस्य वृद्धये उपात्तरजोऽतिमात्रो

मामीक्षसे तदु ह नः परमानुकम्पा ॥ ४६ ॥

शब्दार्थ

अस्तु—हो; अम्बुज-अक्ष—हे कमल-नयन; मम—मेरा; ते—तुम्हारे; चरण—चरणों के प्रति; अनुरागः—स्थायी आकर्षण; आत्मन्—आपमें; रतस्य—आनन्द लेने वाले का; मयि—मेरे प्रति; च—तथा; अनतिरिक्त—अपर्याप्त; दृष्टेः—जिसकी दृष्टि; यर्हि—जब; अस्य—इस ब्रह्माण्ड की; वृद्धये—वृद्धि के लिए; उपात्त—कल्पना करते हुए; रजः—रजोगुण का; अति-मात्रः—आधिक्य; माम्—मुझ पर; ईक्षसे—आप देखते हैं; तत्—वह; उ ह—निस्सन्देह; नः—हमारे लिए; परम—सर्वाधिक; अनुकम्पा—कृपा का प्रदर्शन।

हे कमल-नयन, यद्यपि आप अपने में तुष्ट रहते हैं जिससे शायद ही कभी मेरी ओर ध्यान देते हैं, तो भी कृपा करके मुझे अपने चरणकमलों के प्रति स्थायी प्रेम का आशीर्वाद दें। जब आप ब्रह्माण्ड की सृष्टि करने के लिए रजोगुण की प्रधानता धारण करते हैं तभी आप मुझ पर दृष्टि डालते हैं, जो निस्सन्देह मेरे ऊपर आपकी महती कृपा होती है।

तात्पर्य : इस अध्याय के श्लोक २० में कृष्ण ने कहा था, “हम सदैव आत्मतुष्ट रहने के कारण अपनी पत्नियों, बच्चों तथा सम्पत्ति की तनिक भी परवाह नहीं करते।” यहाँ पर रुक्मिणीदेवी विनीत-भाव से उत्तर देती हैं, “हाँ, आप अपने भीतर आनन्द का अनुभव करते हैं इसीलिए मेरी ओर विरले ही

देखते हैं।”

इस सन्दर्भ में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती इंगित करते हैं कि श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी के प्रति अपने प्रेम की घोषणा पहले ही कर दी थी ( भागवत १०.५३.२ )— *तथाहमपि तच्चित्तो निद्रां च न लभे निशि*—में उसके विषय में भी सोचता रहता हूँयहाँ तक कि मुझे रात में नींद नहीं आती। कृष्ण अपने में तुष्ट रहने वाले हैं और यदि हम यह स्मरण रखें कि श्रीमती रुक्मिणीदेवी उनकी अन्तरंगा शक्ति हैं, तो हम समझ सकते हैं कि उनके साथ कृष्ण के प्रेमालाप उनके शुद्ध आध्यात्मिक सुख की अभिव्यक्तियाँ हैं।

किन्तु यहाँ पर महारानी रुक्मिणी भगवान् की बहिरंगा शक्ति के रूप में अपनी पहचान करती हैं, जो कि उनकी अंशरूपा हैं। इसीलिए वे कहती हैं, “यद्यपि आप प्रायः मेरी ओर नहीं देखते किन्तु जब आप भौतिक ब्रह्माण्ड की सृष्टि करने वाले होते हैं और रजोगुण के माध्यम से, जो कि आपकी शक्ति है, कार्य करना शुरू करते हैं, तो आप मुझ पर दृष्टि डालते हैं। इस तरह आप मुझ पर अपनी महती दया प्रदर्शित करते हैं।” इस तरह आचार्य विश्वनाथ बतलाते हैं कि देवी रुक्मिणी के कथन को दो प्रकार से समझा जा सकता है। और असल में सारे वैष्णवजन प्रामाणिक आचार्यों से कृष्ण-दर्शन को भलीभाँति समझ कर भगवान् तथा उनके महान् भक्तों के मध्य के इन प्रेमालापों का आनन्द लूटते हैं।

नैवालीकमहं मन्ये वचस्ते मधुसूदन ।

अम्बाया एव हि प्रायः कन्यायाः स्याद्रतिः क्वचित् ॥ ४७ ॥

शब्दार्थ

न—नहीं; एव—निस्सन्देह; अलीकम्—असत्य; अहम्—मैं; मन्ये—सोचती हूँ; वचः—शब्दों को; ते—तुम्हारे; मधु-सूदन—हे मधु-हन्ता; अम्बायाः—अम्बा का; एव हि—निश्चय ही; प्रायः—सामान्यतया; कन्यायाः—कन्या का; स्यात्—उत्पन्न हुआ; रतिः—आकर्षण ( शाल्व के प्रति ); क्वचित्—एक बार।

हे मधु-सूदन, मैं आपके वचनों को वास्तव में असत्य नहीं मानती। प्रायः अविवाहिता लड़की पुरुष के प्रति आकृष्ट हो जाती है जैसा अम्बा के साथ हुआ।

तात्पर्य : भगवान् कृष्ण द्वारा कही गई सारी बातों को काट कर अब श्रीमती रुक्मिणी उनके कथनों की सत्यता की शिष्टाचार-भाव से प्रशंसा करती हैं। दूसरे शब्दों में, वे स्वीकार करती हैं कि भगवान् कृष्ण ने सामान्य नारी मनोविज्ञान को स्पष्ट करने के लिए उन्हें उदाहरण बनाया। काशी-नरेश के तीन कन्याएँ थीं—अम्बा, अम्बालिका तथा अम्बिका। इनमें से अम्बा शाल्व के प्रति आकृष्ट थी। *महाभारत* में यह कथा कही गई है।

व्यूढायाश्चापि पुंश्चल्या मनोऽभ्येति नवं नवम् ।  
बुधोऽसतीं न बिभृयात्तां बिभ्रदुभयच्युतः ॥ ४८ ॥

**शब्दार्थ**

व्यूढायाः—विवाहित स्त्री का; च—तथा; अपि—भी; पुंश्चल्याः—पुंश्चली, कुलटा; मनः—मन; अभ्येति—आकृष्ट होता है; नवम् नवम्—नये से नये (प्रेमी) के प्रति; बुधः—बुद्धिमान; असतीम्—कुलटा स्त्री को; न बिभ्यात्—पालन नहीं करना चाहिए; ताम्—उसका; बिभ्रत्—पालन; उभय—दोनों (इस लोक में तथा परलोक में) से; च्युतः—गिरी हुई।

कुलटा स्त्री का मन सदैव नवीन प्रेमियों के लिए लालायित रहता है, चाहे वह विवाहिता क्यों न हो। बुद्धिमान मनुष्य को चाहिए कि वह ऐसी कुलटा स्त्री को अपने साथ न रखे क्योंकि यदि वह ऐसा करेगा तो वह इस जीवन में तथा अगले जीवन में सौभाग्य से वंचित रहेगा।

**श्रीभगवानुवाच**

साध्व्येतच्छ्रोतुकामैस्त्वं राजपुत्री प्रलम्बिता ।  
मयोदितं यदन्वात्थ सर्वं तत्सत्यमेव हि ॥ ४९ ॥

**शब्दार्थ**

श्री-भगवान् उवाच—भगवान् ने कहा; साध्वि—हे साधु नारी; एतत्—यह; श्रोतु—सुनने के लिए; कामैः—(हमारे द्वारा) अभीष्ट; त्वम्—तुम; राज-पुत्री—हे राजकुमारी; प्रलम्बिता—बेवकूफ बनाई गई; मया—मेरे द्वारा; उदितम्—कहे गये; यत्—जो; अन्वात्थ—तुमने जिनके उत्तर दिये; सर्वम्—सभी; तत्—वह; सत्यम्—सही; एव हि—निस्सन्देह।

भगवान् ने कहा : हे साध्वी, हे राजकुमारी, हमने तुम्हें इसीलिए झुठलाया क्योंकि हम तुम्हें इस प्रकार बोलते सुनना चाहते थे। निस्सन्देह तुमने हमारे वचनों के उत्तर में जो बातें कही हैं, वे एकदम सही हैं।

यान्यान्कामयसे कामान्मय्यकामाय भामिनि ।  
सन्ति ह्येकान्तभक्तायास्तव कल्याणि नित्यद ॥ ५० ॥

**शब्दार्थ**

यान् यान्—जो जो; कामयसे—कामना करती हो; कामान्—वरों को; मयि—मुझसे; अकामाय—इच्छा से रहित होने के लिए; भामिनि—हे सुन्दरी; सन्ति—हैं; हि—निस्सन्देह; एक-अन्त—नितान्त; भक्तायाः—भक्तों के लिए; तव—तुम्हारे; कल्याणि—हे कल्याणी; नित्यदा—सदैव।

हे सुन्दर तथा सुशील स्त्री, तुम भौतिक इच्छाओं से मुक्त होने के लिए जिस भी वर की आशा रखती हो वे तुम्हारे हैं क्योंकि तुम मेरी अनन्य भक्त हो।

उपलब्धं पतिप्रेम पातिव्रत्यं च तेऽनघे ।  
यद्वाक्यैश्चाल्यमानाया न धीर्मय्यपकर्षिता ॥ ५१ ॥

**शब्दार्थ**

उपलब्धम्—अनुभूत; पति—पति के लिए; प्रेम—शुद्ध-प्रेम; पाति—पति के प्रति; ब्रत्यम्—सती व्रत का दृढ़ता से पालन; च—  
तथा; ते—तुम्हारा; अनघे—हे निष्पाप; यत्—जो; वाक्यैः—शब्दों से; चाल्यमानायाः—विचलित हुए; न—नहीं; धीः—तुम्हारा  
मन; मयि—मुझमें अनुरक्त; अपकर्षिता—दूर खींचा गया।

हे निष्पाप, अब मैंने तुम्हारा शुद्ध पति-प्रेम तथा पातिव्रत्य देख लिया है। यद्यपि तुम मेरे  
वचनों से विचलित थीं किन्तु तुम्हारा मन मुझसे दूर नहीं ले जाया जा सका।

तात्पर्य : श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती निम्नलिखित श्लोक उद्धृत करते हैं जिसमें रुक्मिणी तथा कृष्ण  
के शुद्ध-प्रेम का वर्णन हुआ है—

*सर्वथा ध्वंसरहितं सत्यपि ध्वंसकारणे ।*

*यद्भावबन्धनं यूनाः स प्रेमा परिकीर्तितः ॥*

“जब एक युवक तथा युवती के बीच का स्नेह-बन्धन, उसके टूटने का कारण उपस्थित होते हुए  
भी, कभी टूटता नहीं तो उनके बीच का यह अनुराग शुद्ध-प्रेम कहलाता है।” भगवान् कृष्ण तथा  
उनके शुद्ध दम्पति-संगियों के मध्य नित्य प्रेमालाप की यही प्रकृति है।

ये मां भजन्ति दाम्पत्ये तपसा व्रतचर्यया ।

कामात्मानोऽपवर्गेशं मोहिता मम मायया ॥ ५२ ॥

**शब्दार्थ**

ये—जो; माम्—मुझको; भजन्ति—पूजता है; दाम्पत्ये—गृहस्थ जीवन में रहने के लिए; तपसा—तपस्या द्वारा; व्रत—व्रतों को;  
चर्यया—सम्पन्न करके; काम-आत्मानः—प्रकृति से कामुक विषयी; अपवर्ग—मोक्ष का; ईशम्—नियन्ता; मोहिताः—मोहित;  
मम—मेरी; मायया—भ्रामक भौतिक-शक्ति द्वारा।

यद्यपि मुझमें आध्यात्मिक मोक्ष प्रदान करने की शक्ति है किन्तु विषयी लोग अपने संसारी  
गृहस्थ जीवन के लिए मेरा आशीर्वाद प्राप्त करने के लिए तपस्या तथा व्रतों द्वारा मेरी पूजा करते  
हैं। ऐसे लोग मेरी माया-शक्ति द्वारा मोहग्रस्त रहते हैं।

तात्पर्य : दाम्पत्ये शब्द पति तथा पत्नी के सम्बन्ध का सूचक है। विषयी तथा मोहित व्यक्ति इस  
सम्बन्ध को बढ़ाने के लिए भगवान् की पूजा करते हैं यद्यपि वे जानते हैं कि भगवान् उन्हें नश्वर  
वस्तुओं के प्रति उनकी वृथा की आसक्ति से मुक्त कर सकते हैं।

मां प्राप्य मानिन्यपवर्गसम्पदं

वाञ्छन्ति ये सम्पद एव तत्पतिम् ।



ते मन्दभागा निरयेऽपि ये नृणां

मात्रात्मकत्वान्निरयः सुसङ्गमः ॥ ५३ ॥

शब्दार्थ

माम्—मुझको; प्राप्य—पाकर; मानिनि—हे प्रेम की आगार; अपवर्ग—मोक्ष का; सम्पदम्—कोष; वाञ्छन्ति—चाहते हैं; ये—जो; सम्पदः—( भौतिक ) कोष; एव—केवल; तत्—ऐसे; पतिम्—पति को; ते—वे; मन्द-भागाः—कम भाग्यशाली; निरये—नरक में; अपि—भी; ये—जो; नृणाम्—मनुष्यों के लिए; मात्रा-आत्मकत्वात्—इन्द्रिय-तृप्ति में लीन रहने के कारण; निरयः—नरक; सु-सङ्गमः—उपयुक्त।

हे मानिनी, अभागे वे हैं, जो मोक्ष तथा भौतिक सम्पदा दोनों ही के स्वामी मुझको पाकर के भी, केवल भौतिक सम्पदा के लिए ही लालायित रहते हैं। ये सांसारिक लाभ तो नरक में भी पाये जा सकते हैं। चूँकि ऐसे व्यक्ति इन्द्रिय-तृप्ति में लीन रहते हैं इसलिए नरक ही उनके लिए उपयुक्त स्थान है।

तात्पर्य : इसमें तर्क यह है कि जब भगवान् कृष्ण समस्त आनन्द तथा समस्त ऐश्वर्य के उद्गम हैं, तो वे ही परम आनन्द तथा सर्वाधिक ऐश्वर्यवान हैं। इसलिए हमारा असली स्वार्थ इसी में है कि हम अपने को भगवान् कृष्ण की प्रेमाभक्ति में सदैव लगायें। जैसाकि प्रह्लाद महाराज कहते हैं ( भागवत ७.५.३१)—*न ते विदुः स्वार्थगतिं हि विष्णुम्*—अज्ञानी यह नहीं जानते कि उनका असली स्वार्थ भगवान् विष्णु (कृष्ण) को पाने में निहित है।

श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती के अनुसार, मनुष्य को स्त्री-संग तथा अन्य इन्द्रिय-भोग नरक में भी प्राप्य हैं। यह व्यावहारिक अनुभव है कि कूकर, शूकर तथा कबूतर को भी संभोग करने के पर्याप्त अवसर प्राप्त हैं। यह दुर्भाग्य ही है कि आधुनिक मानव, जिन्हें कृष्णभावनाभावित होने का स्वर्णिम अवसर मिला हुआ है, कुत्तों, बिल्लियों की तरह विषय-सुख को श्रेयस्कर समझते हैं। और यह सब भौतिक उन्नति के नाम पर हो रहा है।

दिष्ट्या गृहेश्वर्यसकृन्मयि त्वया

कृतानुवृत्तिर्भवमोचनी खलैः ।

सुदुष्करासौ सुतरां दुराशिषो

ह्यसुंभराया निकृतिं जुषः स्त्रियाः ॥ ५४ ॥

शब्दार्थ

दिष्ट्या—भाग्यवश; गृह—घर की; ईश्वरी—स्वामिनी; असकृत्—निरन्तर; मयि—मुझमें; त्वया—तुम्हारे द्वारा; कृता—की हुई; अनुवृत्तिः—श्रद्धापूर्ण सेवा; भव—संसार से; मोचनी—मुक्ति दिलाने वाली; खलैः—ईर्ष्यालुओं के लिए; सु-दुष्करा—करना अत्यन्त कठिन; असौ—यह; सुतराम्—विशेष रूप से; दुराशिषः—दुष्ट मनोभावों वाले; हि—निस्सन्देह; असुम्—उसका प्राण; भरायाः—जो ( एकमात्र ) पालन करती है; निकृतिम्—छलावा; जुषः—लिप्त; स्त्रियाः—स्त्री के लिए।

हे गृहस्वामिनी, सौभाग्यवश तुमने मेरी श्रद्धापूर्वक भक्ति की है, जो मनुष्य को संसार से मुक्त कराती है। ईर्ष्यालु के लिए यह सेवा अत्यन्त कठिन है, विशेषतया उस स्त्री के लिए जिसके मनोभाव दूषित हैं और जो शारीरिक क्षुधा शान्त करने के लिए ही जीवित है और जो छलछद्म में लिप्त रहती है।

तात्पर्य : श्रील जीव गोस्वामी यह प्रश्न करते हैं: चूँकि भक्ति से मनुष्य को आसानी से मुक्ति मिल जाती है, तो फिर क्या ऐसा नहीं हो सकता कि सारे लोग मुक्त हो जाँय और यह संसार रहे ही न? वे इसका उत्तर देते हैं कि ऐसा कोई खतरा नहीं है क्योंकि ईर्ष्यालु, छलछद्ममय, विषयी लोगों के लिए भगवान् की श्रद्धापूर्वक सेवा कर पाना बहुत कठिन है और संसार में ऐसे लोगों की कोई कमी नहीं है।

न त्वाद्दृशीम्प्रणयिनीं गृहिणीं गृहेषु  
पश्यामि मानिनि यया स्वविवाहकाले ।  
प्राप्तानृपान्न विगणय्य रहोहरो मे  
प्रस्थापितो द्विज उपश्रुतसत्कथस्य ॥ ५५ ॥

#### शब्दार्थ

न—नहीं; त्वाद्दृशीम्—तुम जैसी; प्रणयिनीम्—प्रेम करने वाली; गृहिणीम्—पत्नी को; गृहेषु—मेरे आवासों में; पश्यामि—देखता हूँ; मानिनि—हे आदरणीय; यया—जिससे; स्व—अपने; विवाह—विवाह के; काले—समय में; प्राप्तान्—आये हुए; नृपान्—राजाओं को; न विगणय्य—परवाह न करते हुए; रहः—गुप्त सन्देश का; हरः—ले जाने वाला; मे—मेरे पास; प्रस्थापितः—भेजा गया; द्विजः—ब्राह्मण; उपश्रुत—सुनी हुई; सत्—सच्ची; कथस्य—जिसके विषय में कथाएँ।

हे सर्वाधिक आदरणीया, मुझे अपने सारे आवासों में तुम जैसी प्रेम करने वाली अन्य पत्नी ढूँढ़े नहीं मिलती। जब तुम्हारा ब्याह होने वाला था, तो तुमसे विवाह करने के इच्छुक जितने राजा एकत्र हुए थे उनकी परवाह तुमने नहीं की और क्योंकि तुमने मेरे विषय में प्रामाणिक बातें ही सुन रखी थीं तुमने अपना गुप्त सन्देश एक ब्राह्मण के हाथ मेरे पास भेजा।

भ्रातुर्विरूपकरणं युधि निर्जितस्य  
प्रोद्वाहपर्वणि च तद्वधमक्षगोष्ठ्याम् ।  
दुःखं समुत्थमसहोऽस्मदयोगभीत्या  
नैवाब्रवीः किमपि तेन वयं जितास्ते ॥ ५६ ॥

#### शब्दार्थ

भ्रातुः—तुम्हारे भाई का; विरूप-करणम्—विरूप किया जाना; युधि—युद्ध में; निर्जितस्य—पराजित; प्रोद्वाह—विवाहोत्सव का ( रुक्मिणी के पौत्र अनिरुद्ध का ); पर्वणि—नियत दिन पर; च—तथा; तत्—उसका; वधम्—मारा जाना; अक्ष-गोष्ठ्याम्—द्यूत-क्रीड़ा ( चौसर ) के समय; दुःखम्—दुख; समुत्थम्—पूर्णरूप से अनुभवी; असहः—असह्य; अस्मत्—हमसे;

अयोग—वियोग के; भीत्या—भय से; न—नहीं; एव—निस्सन्देह; अब्रवीः—तुमने कहा; किम् अपि—कुछ भी; तेन—उससे; वयम्—हम; जिताः—जीते गये; ते—तुम्हारे द्वारा।

जब तुम्हारा भाई युद्ध में पराजित होकर विरूप कर दिया गया और अनिरुद्ध के विवाह के दिन चौसर खेलते समय मार डाला गया तो तुम्हें असह्य दुख हुआ। फिर भी तुमने मुझसे विलग होने के भय से एक शब्द भी नहीं कहा। अपनी इस चुप्पी से तुमने मुझे जीत लिया है।

तात्पर्य : यहाँ पर कृष्ण एक घटना का उल्लेख करते हैं, जो अगले अध्याय में वर्णित की जायेगी। इस प्रकार रुक्मिणी से कृष्ण की यह वार्ता अनिरुद्ध के विवाह के बाद हुई होगी।

दूतस्त्वयात्मलभने सुविविक्तमन्त्रः

प्रस्थापितो मयि चिरायति शून्यमेतत् ।

मत्वा जिहास इदं अङ्गमनन्ययोग्यं

तिष्ठेत तत्त्वयि वयं प्रतिनन्दयामः ॥ ५७ ॥

शब्दार्थ

दूतः—दूत; त्वया—तुम्हारे द्वारा; आत्म—मुझको; लभने—प्राप्त करने के लिए; सु-विविक्त—अत्यन्त गोपनीय; मन्त्रः—सलाह; प्रस्थापितः—भेजा; मयि—जब मैंने; चिरायति—विलम्ब हुआ; शून्यम्—रिक्त; एतत्—यह (संसार); मत्वा—सोच कर; जिहासे—तुमने त्यागना चाहा; इदम्—यह; अङ्गम्—शरीर; अनन्य—किसी दूसरे के लिए नहीं; योग्यम्—उपयुक्त; तिष्ठेत—रुक सकता है; तत्—वह; त्वयि—तुममें; वयम्—हम; प्रतिनन्द-यामः—प्रसन्न होकर उत्तर देते हैं।

जब तुमने अपनी अत्यन्त गुप्त योजना के साथ अपना दूत भेजा था और तब मुझे तुम्हारे पास जाने में विलम्ब हुआ था, तो तुम्हें सारा संसार शून्य जैसा दिखने लगा था और तुम अपना वह शरीर त्यागना चाह रही थी जिसे तुम मेरे अतिरिक्त अन्य किसी को नहीं दे सकती थी। तुम्हारी यह महानता सदैव तुममें बनी रहे। मैं इसके बदले में तुम्हें तुम्हारी भक्ति के लिए हर्षपूर्वक धन्यवाद देने के अतिरिक्त कर ही क्या सकता हूँ!

तात्पर्य : श्रीमती रुक्मिणीदेवी के मन में कृष्ण के अतिरिक्त अन्य किसी को पति बनाने का कभी कोई मन्तव्य नहीं था जैसाकि उन्होंने कृष्ण के पास भेजे गये अपने सन्देश में कहा था ( भागवत १०.५२.४३ )—*यद्दाम्बुजाक्ष न लभेय भवत्प्रसादं। जह्यामसून् व्रतकृशान् शतजन्मभिः स्यात्*—यदि आपने कृपा नहीं की तो मैं अपने प्राण त्याग दूँगी जो मेरी तपस्या के कारण अत्यन्त क्षीण हो चुका होगा। तब हो सकता है सैकड़ों जीवन तक प्रयास के बाद मैं आपकी कृपा पा सकूँ। श्रीमद्भागवत द्वारा महारानी रुक्मिणीदेवी की अद्वितीय महिमा स्थापित होती है।

श्रीशुक उवाच

एवं सौरतसंलापैर्भगवान्जगदीश्वरः ।

स्वरतो रमया रेमे नरलोकं विडम्बयन् ॥ ५८ ॥

शब्दार्थ

श्री-शुकः उवाच—शुकदेव गोस्वामी ने कहा; एवम्—इस प्रकार; सौरत—सुरति सम्बन्धी; संलापैः—बातचीत से; भगवान्—भगवान्; जगत्—ब्रह्माण्ड के; ईश्वरः—स्वामी; स्व—अपने में; रतः—आनन्दमग्न; रमया—रमा या लक्ष्मी के साथ ( अर्थात् रुक्मिणी के साथ ); रेमे—रमण किया; नर-लोकम्—मनुष्यों के संसार का; विडम्बयन्—अनुकरण करते हुए।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा : इस तरह ब्रह्माण्ड के स्वामी आत्माराम भगवान् ने उन्हें प्रेमियों की वार्ता में लगाकर और इस तरह मानव समाज की रीतियों का अनुकरण करते हुए लक्ष्मी के साथ रमण किया।

तात्पर्य : विडम्बयन् शब्द का अर्थ है “अनुकरण करते हुए” तथा “उपहास करते हुए।” भगवान् इस जगत के पति के समान कार्य कर रहे थे किन्तु उनकी लीलाएँ दिव्य हैं और दैहिक इन्द्रिय-तुष्टि को लक्ष्य करके की गई संसारी गतिविधियों की विकृति का पर्दाफाश करने वाली हैं।

तथान्यासामपि विभुर्गृहेषु गृहवानिव ।

आस्थितो गृहमेधीयान्धर्मान्लोकगुरुर्हरिः ॥ ५९ ॥

शब्दार्थ

तथा—इसी तरह से; अन्यासाम्—अन्यों ( रानियों ) के; अपि—भी; विभुः—सर्वशक्तिमान भगवान्; गृहेषु—घरों में; गृह-वान्—गृहस्थ; इव—मानो; आस्थितः—पूरी की गई; गृह-मेधीयान्—पवित्र गृहस्थों के; धर्मान्—धार्मिक कर्तव्य; लोक—सारे जगत् के; गुरुः—गुरु; हरिः—कृष्ण ने।

समस्त लोकों के गुरु सर्वशक्तिमान भगवान् हरि ने इसी तरह से अपनी अन्य रानियों के महलों में गृहस्थ के धार्मिक कृत्य सम्पन्न करते हुए पारम्परिक गृहस्थ की तरह आचरण किया।

इस प्रकार श्रीमद्भागवत के दसवें स्कंध के अन्तर्गत “रुक्मिणी के साथ कृष्ण का परिहास” नामक साठवें अध्याय के श्रील भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद के विनीत सेवकों द्वारा रचित तात्पर्य पूर्ण हुए।